।। श्री चन्द्रप्रभस्वामिने नमः ।।

'सेवानुरागी मंडल रत्न'

श्री वर्धमान जैन मंडल, चेन्नई (रजि.)

(संस्थापक सदस्य : श्री तमिलनाड जैन महामंडल)

Estd.:1991

Estd.:2006

श्री वर्धमान कुंवर जैन संस्कार वाटिका

... Ek Summer & Holiday Camp

जैन तत्त्व दर्शन

(JAIN TATVA DARSHAN)

पाठ्यक्रम – 5

संकलन व प्रकाशक

श्री वर्धमान जैन मंडल, चेन्नई

एक ज्ञान ज्योत जो बनी अमर ज्योत

जन्म दिवस
14-2-1913

स्वर्गवास
27-11-2005

पंडित भूषण पंडितवर्य श्री कुंवरजीभाई दोसी

विशेष परिचय

* जन्म : गुजरात के भावनगर जिले के जैसर गाँव में हुआ था।
* सम्यग्ज्ञान प्रदान : भावनगर, महेसाणा, पालिताणा, बैंगलोर, मद्रास।
* प.पू. पंन्यास प्रवर श्री भद्रंकरविजयजी म.सा. का आपश्री पर विशेष उपकार।
* श्री संघ द्वारा पंडित भूषण की पदवी से सुशोभित।
* अहमदाबाद में वर्ष 2003 के सर्वश्रेष्ठ पंडितवर्य की पदवी से सम्मानित।
* प्रायः सभी आचार्य भगवंतों, साधु -साध्वीयों से विशेष अनुमोदनीय।
* धर्मनगरी चेन्नई पर सतत् 45 वर्ष तक सम्यग् ज्ञान का फैलाव।
* तत्त्वज्ञान, ज्योतिष, संस्कृत, व्याकरण के विशिष्ट ज्ञाता।
* पूरे भारत भर में बड़ी संख्या में अंजनशलाकाएँ एवं प्रतिष्ठाओं के महान् विधिकारक।
* अनुष्ठान एवं महापूजन को पूरी तन्मयता से करने वाले ऐसे अद्भुत श्रद्धावान्।
* स्मरण शक्ति के अनमोल धारक।
* तकरीबन 100 छात्र-छात्राओं को संयम मार्ग की ओर अग्रसर कराने वाले।
* कई साधु-साध्वीयों को धार्मिक अभ्यास कराने वाले।
* आपश्री द्वारा मंत्रों का स्पष्ट उच्चारण एवं विधि में शुद्धता को विशेष प्रधानता।
* तीर्थ यात्रा के प्रेरणा स्त्रोत।

दुनिया से भले गये पंडितजी आप, हमारे दिल से न जा पायेंगे।
आप की लगाई इन ज्ञान परब पर, जब-जब ज्ञान जल पीने जायेगें
तब बेशक गुरुवर आप हमें बहुत याद आयेंगे.....

वि.सं.२०७१ ई.स.2015 चतुर्थ आवृत्ति - 1000 प्रतिया (कुल 6000 प्रतिया) मूल्य : ₹70/-
सर्वहक : श्रमण प्रधान श्री संघ के आधीन साधु-साध्वीजी भगवंतो को और ज्ञानभंडारो को भेंट स्वरूप मिलेगी।

।। श्री चन्द्रप्रभस्वामिने नमः ।।

श्री वर्धमान कुंवर जैन संस्कार वाटिका

श्री वर्धमान कुंवर जैन संस्कार वाटिका

..... *Ek Summer & Holiday Camp*

जैन तत्त्व दर्शन

पाठ्यक्रम 5

* दिव्याशीष *

"पंडित भूषण" श्री कुंवरजीभाई दोशी

* संकलन व प्रकाशक *

श्री वर्धमान जैन मंडल

33, रेड्डी रामन स्ट्रीट, चेन्नई - 600 079. फोन : 044 - 2529 0018 / 2536 6201 / 2539 6070 / 2346 5721

E-mail : svjm1991@gmail.com Website : www.jainsanskarvatika.com

यह पुस्तक बच्चों को ज्यादा उपयोगी बने, इस हेतु आपके सुधार एवं सुझाव प्रकाशक के पते पर अवश्य भेंजे।

संस्कार वाटिका

अंधकार से प्रकाश की ओर

.... एक कदम

अज्ञान अंधकार है, ज्ञान प्रकाश है, अज्ञान रूपी अंधकार हमें वस्तु की सच्ची पहचान नहीं होने देता। अंधकार में हाथ में आये हुए हीरे को कोई कांच का टुकडा मानकर फेंक दे तो भी नुकसान है और अंधकार में हाथ में आये चमकते कांच के टुकडे को कोई हीरा मानकर तिजोरी में सुरक्षित रखे तो भी नुकसान हैं।

ज्ञान सच्चा वह है जो आत्मा में विवेक को जन्म देता है। क्या करना, क्या नहीं करना, क्या बोलना, क्या नहीं बोलना, क्या विचार करना, क्या विचार नहीं करना, क्या छोडना, क्या नहीं छोडना, यह विवेक को पैदा करने वाला सम्यग ज्ञान है। संक्षिप्त में कहें तो हेय, ज्ञेय, उपादेय का बोध कराने वाला ज्ञान ही सचा ज्ञान है। वही सम्यग ज्ञान है।

संसार के कई जीव बालक की तरह अज्ञानी है, जिनके पास भक्ष्य–अभक्ष्य, पेय–अपेय, श्राव्य–अश्राव्य और करणीय–अकरणीय का विवेक नहीं होने के कारण वे जीव करने योग्य कई कार्य नहीं करते और नहीं करने योग्य कई कार्य वे हंसते–हंसते करके पाप कर्म बांधते हैं।

बालकों का जीवन ब्लोटिंग पेपर की तरह होता है। मां–बाप या शिक्षक जो संस्कार उसमें डालने के लिए मेहनत करते हैं वे ही संस्कार उसमें विकसित होते हैं।

बालकों को उनकी ग्रहण शक्ति के अनुसार आज जो जैन दर्शन के सूत्रज्ञान–अर्थज्ञान और तत्त्वज्ञान की जानकारी दी जाय, तो आज का बालक भविष्य में हजारों के लिए सफल मार्गदर्शक बन सकता है।

बालकों को मात्र सूत्र कंठस्थ कराने से उनका विकास नहीं होगा, उसके साथ सूत्रों के अर्थ, सूत्रों के रहस्य, सूत्र के भावार्थ, सूत्रों का प्रेक्टिकल उपयोग, आदि बातें उन्हें सिखाने पर ही बच्चों में धर्मक्रिया के प्रति रूचि पैदा हो सकती है।

धर्मस्थान और धर्म क्रिया के प्रति बच्चों का आकर्षण उसी ज्ञान दान से संभव होगा। इसी उद्देश्य के साथ वि.सं. २०६२ (14 अप्रेल 2006) में 375 बच्चों के साथ चेन्नई महानगर के

साहुकारपेट में **''श्री वर्धमान जैन मंडल''** ने संस्कार वाटिका के रूप में जिस बीज को बोया था, वह बीज आज वटवृक्ष के सदृश्य लहरा रहा है। आज हर बच्चा यहां आकर स्वयं को गौरवान्वित महसूस करता है।

पंडित भूषण पंडितवर्य श्री कुंवरजीभाई दोसी, जिनका हमारे मंडल पर असीम उपकार है उनके स्वर्गवास के पश्चात मंडल के अग्रगण्य सदस्यों की एक तमन्ना थी कि जिस सद्ज्ञान की ज्योत को पंडितजी ने जगाई है, वह निरंतर जलती रहे, उसके प्रकाश में आने वाला हर मानव स्व व पर का कल्याण कर सके।

इसी उद्देश्य के साथ आजकल की बाल पीढी को जैन धर्म की प्राथमिकी से वासित करने के लिए सर्वप्रथम श्री वर्धमान कुंवर जैन संस्कार वाटिका की नींव डाली गयी। वाटिका बच्चों को आज सम्यग्ज्ञान दान कर उनमें श्रद्धा उत्पन्न करने की उपकारी भूमिका निभा रही हैं। आज यह संस्कार वाटिका चेन्नई महानगर से प्रारंभ होकर भारत में ही नहीं अपितु विश्व के कोने-कोने में अपने पांव पसार कर सम्यग् ज्ञान दान का उत्तम दायित्व निभा रही है।

जैन बच्चों को जैनाचार संपन्न और जैन तत्त्वज्ञान में पारंगत बनाने के साथ-साथ उनमें सद् श्रद्धा का बीजारोपण करने का आवश्यक प्रयास वाटिका द्वारा नियुक्त श्रद्धा से वासित हृदय वाले अध्यापक व अध्यापिकागणों द्वारा निष्ठापूर्वक इस वाटिका के माध्यम से किया जा रहा है।

संस्कार वाटिका में बाल वर्ग से युवा वर्ग तक के समस्त विद्यार्थियों को स्वयं के कक्षानुसार जिनशासन के तत्त्वों को समझने और समझाने के साथ उनके हृदय में श्रद्धा दृढ हो ऐसे शुद्ध उद्देश्य से **''जैन तत्त्व दर्शन (भाग 1 से 9 तक)''** प्रकाशित करने का इस वाटिका ने पुरुषार्थ किया है। इन अभ्यास पुस्तिकाओं द्वारा ''जैन तत्त्व दर्शन (भाग 1 से 9), कलाकृत्ति (भाग 1-3), दो प्रतिक्रमण, पांच प्रतिक्रमण, पर्युषण आराधना'' पुस्तक आदि के माध्यम से अभ्यार्थीयों को सहजता अनुभव होगी।

इन पुस्तकों के संकलन एवं प्रकाशन में चेन्नई महानगर में चातुर्मास हेतु पधारे, पूज्य गुरु भगवंतों से समय-समय पर आवश्यक एवं उपयोगी निर्देश निरंतर मिलते रहे हैं। संस्कार वाटिका की प्रगति के लिए अत्यंत लाभकारी निर्देश भी उनसे मिलते रहे हैं। हमारे प्रबल पुण्योदय से इस पाठ्यक्रम के प्रकाशन एवं संकलन में विविध समुदाय के आचार्य भगवंत, मुनि भगवंत, अध्यापक, अध्यापिका, लाभार्थी परिवार, श्रुत ज्ञान पिपासु आदि का पुस्तक मुद्रण में अमूल्य सहयोग मिला, तदर्थ धन्यवाद। आपका सुन्दर सहकार अविस्मरणीय रहेगा।

इस पुस्तक के मुद्रक जगावत प्रिंटर्स धन्यवाद के पात्र हैं जिन्होंने समय पर पुस्तकों को प्रकाशित करने में सहयोग दिया।

इन पाठ्यक्रमों के नौ भाग को तैयार करने में विविध पुस्तकों का सहयोग लिया है एवं नामी–अनामी चित्रकारों के चित्र लिये गये हैं। अत: उन पुस्तकों के लेखक, संपादक, प्रकाशकों के हम सदा ऋणी रहेंगे। इस पाठ्यक्रम के प्रकाशन में कोई भूल त्रुटि हो तो सुज्ञ वाचकगण सुधार लेवें।

शुभेच्छा :-

अंत में ''जैन तत्त्व दर्शन'' के विविध पाठ्यक्रमों के माध्यम से सम्यग् ज्ञान प्राप्ति के साथ हर जैन बालक जीवन में आचरणीय सर्वविरती, संयम दीक्षा के परिणाम को प्राप्त करें ऐसी शुभाभिलाषा...

संस्कार वाटिका – जैन संघ के अभ्युदय के लिए कलयुग में कल्पवृक्ष रूप प्रमाणित हो, यही मंगल मनीषा।

भेजिये आपके लाल को, सच्चे जैन हम बनायेंगे।
दुनिया पूजेगी उनको, इतना महान बनायेंगे।।

जिनशासन सेवानुरागी

श्री वर्धमान जैन मंडल

साहुकारपेट, चेन्नई–79.

मंडल को विविध गुरु भगवंतों का सफल मार्गदर्शन एवं आशीर्वाद :-

1. प. पू. पंन्यास श्री अजयसागरजी म.सा.
2. प. पू. पंन्यास श्री उदयप्रभविजयजी म.सा.
3. प. पू. मुनिराज श्री युगप्रभविजयजी म.सा.
4. प. पू. मुनिराज श्री अभ्युदयप्रभविजयजी म.सा.
5. प. पू. मुनिराज श्री दयासिंधुविजयजी म.सा.

नम्र विनंती :-

समस्त आचार्य भगवंत, मुनि भगवंतों, पाठशाला के अध्यापक–अध्यापिकाओं एवं श्रुत ज्ञान पिपासुओं से नम्र विनंती है कि इन पाठ्यक्रमों के उत्थान हेतु कोई भी विषय या सुझाव अगर आपके पास हो तो हमें अवश्य लिखकर भेजें ताकि हम इसे और भी सुंदर बना सकें।

पाठ्यक्रम के प्रकाशन में निम्न ग्रंथ एवं पुस्तकों का सहयोग :-

:: उपयुक्त ग्रंथ की सूची ::

1) धर्मबिंदु	2) योगबिंदु	3) जीव विचार
4) नवतत्त्व	5) लघुसंग्रहणी	6) चैत्यवंदन भाष्य
7) गुरुवंदन भाष्य	8) श्राद्धविधि प्रकरण	9) प्रथम कर्मग्रंथ

:: उपयुक्त पुस्तक की सूची ::

1) गृहस्थ धर्म	पू. आचार्य श्रीमद् विजय केसरसूरीश्वरजी म.सा.
2) बाल पोथी	पू. आचार्य श्रीमद् विजय भुवनभानूसूरीश्वरजी म.सा.
3) तत्त्वज्ञान प्रवेशिका	पू. आचार्य श्रीमद् विजय कलापूर्णसूरीश्वरजी म.सा.
4) बच्चों की सुवास	पू. आचार्य श्रीमद् विजय भद्रगुप्तसूरीश्वरजी म.सा.
5) कहीं मुरझा न जाए	पू. आचार्य श्रीमद् विजय गुणरत्नसूरीश्वरजी म.सा.
6) रात्रि भोजन महापाप	पू. आचार्य श्रीमद् विजय राजयशसूरीश्वरजी म.सा.
7) पाप की मजा-नरक की सजा	पू. आचार्य श्रीमद् विजय रत्नाकरसूरीश्वरजी म.सा.
8) चलो जिनालय चले	पू. आचार्य श्रीमद् विजय हेमरत्नसूरीश्वरजी म.सा.
9) रीसर्च ऑफ डाईनिंग टेबल	पू. आचार्य श्रीमद् विजय हेमरत्नसूरीश्वरजी म.सा.
10) जैन तत्त्वज्ञान चित्रावली प्रकाश	पू. आचार्य श्रीमद् विजय जयसुंदरसूरीश्वरजी म.सा.
11) अपनी सच्ची भूगोल	पू. पंन्यास श्री अभयसागरजी म.सा.
12) सूत्रोंना रहस्यो	पू. पंन्यास श्री मेघदर्शन विजयजी म.सा.
13) गुड बॉय	पू. पंन्यास श्री वैराग्यरत्न विजयजी म.सा.
14) हेम संस्कार सौरभ/जैन तत्त्व दर्शन	पू. पंन्यास श्री उदयप्रभविजयजी म.सा.
15) आवश्यक क्रिया साधना	पू. मुनिराज श्री रम्यदर्शन विजयजी म.सा.
16) गुरु राजेन्द्र विद्या संस्कार वाटिका	पू. साध्वीजी श्री मणिप्रभाश्रीजी म.सा.
17) पच्चीस बोल	पू. महाश्रमणी श्री विजयश्री *आर्या*

अनुक्रमणिका

1) तीर्थंकर परिचय
A. श्री 24 तीर्थंकर भगवान के कल्याणक तिथि व स्थल 7

2) काव्य संग्रह
A. प्रार्थना – नवपद प्रार्थना 8
B. प्रभु सन्मुख बोलने की स्तुति अरिहंत वंदनावली 8
C. (अ) श्री चंद्रप्रभ जिन चैत्यवंदन 9
(आ) श्री महावीरस्वामी जिन चैत्यवंदन 10
D. (अ) श्री चंद्रप्रभ जिन स्तवन 10
(आ) श्री महावीरस्वामी जिन स्तवन 10
E. (अ) श्री चंद्रप्रभ जिन स्तुति 11
(आ) श्री महावीरस्वामी जिन स्तुति 11
F. (अ) आप स्वभाव की सज्झाय 12

3) जिन पूजा विधि
A. दस त्रिक सहित जिनमंदिर विधि 13
B. पूजा सम्बन्धी उपयोग 16

4) ज्ञान
A. पाठशाला 17

5) नवपद
A. नमस्कार महामंत्र 20

6) नाद घोष
A. दीक्षा सम्बन्धी 27

7) मेरे गुरु
A. गुरुवंदन 28
B. दीक्षा की महत्ता 30

8) दिनचर्या
A. श्रावक जीवन के चौदह नियम 31

9) भोजन विवेक
A. बाईस अभक्ष्य और बत्तीस अनंतकाय 32
B. होटल त्याग 42
C. भोजन करते समय उपयोगी सूचना 43

10) माता-पिता उपकार
A. माता-पिता, गुरु जनादि के 12 प्रकार के विनय 44

11) जीवदया-जयणा
A. जीव विज्ञान 46

12) विनय – विवेक
A. दान के पाँच दूषण 48
B. दान के पांच भूषण 50

13) सम्यग ज्ञान
A. (अ) आठ कर्म के नाम, भेद व चित्र 51
(आ) छट्ठे आरे का वर्णन 59
(इ) देवलोक का स्वरूप 59
(ई) नरक का स्वरूप 60
(उ) नरक में जाने के चार द्वार 61
B. नव तत्त्व 62
C. पर्व एवं आराधना 68
D. अठारह पाप स्थानक 69

14) जैन भूगोल
A. समुद्र में दिखाई देने वाला जलयान 74
B. एफिल टॉवर 75
C. सुएझ नहर और पृथ्वी की गोलाई 76
D. चीन की दीवार क्या कहती है 77
E. स्लेज गाड़ी द्वारा विशाल पृथ्वी की यात्रा 78
F. स्टीमरों और वायुयानों को निगलता बरमूडा त्रिकोण 79

15) सूत्र एवं विधि
A. सूत्र 81
B. अर्थ 81
C. विधि 81
D. पच्चक्खाण – नवकार से आयंबिल तक 81

16) कहानी
A. श्री भरत और बाहुबली 82
B. रोहिणीया चोर 84
C. श्री नयसार 86
D. श्री इलाचीकुमार 87
E. चंद्रा और सगर ने क्रोध की आलोचना न ली 89
F. नमो नमो खंधक महामुनि 90

17) प्रश्नोत्तरी 92
मॉडल पेपर 94

18) सामान्य ज्ञान
A. Game 95
B. चित्रावली 96

रंगीन चित्र-एकेन्द्रिय व पंचेन्द्रिय जीवों का स्वरूप
रंगीन चित्र-दर्शन, चारित्र व ज्ञान के उपकरण

1. तीर्थंकर परिचय

A. श्री 24 तीर्थंकर भगवान के कल्याणक तिथि व स्थल

क्र.	तीर्थंकर	जन्म तिथि	जन्मस्थल	केवलज्ञान तिथि	केवलज्ञान स्थल	निर्वाण तिथि	निर्वाण स्थल
1	श्री ऋषभदेवजी	चैत्र कृष्णा 8	अयोध्या	फाल्गुन कृष्णा 11	पुरिमताल	माघ कृष्णा 13	अष्टापद
2	श्री अजितनाथजी	माघ शुक्ला 8	अयोध्या	पौष शुक्ला 11	अयोध्या	चैत्र शुक्ला 5	सम्मेत शिखर
3	श्री संभवनाथजी	मिगसर शुक्ला 14	श्रावस्ती	कार्तिक कृष्णा 5	श्रावस्ती	चैत्र शुक्ला 5	सम्मेत शिखर
4	श्री अभिनंदनस्वामीजी	माघ शुक्ला 2	अयोध्या	पौष शुक्ला 14	अयोध्या	वैशाख शुक्ला 8	सम्मेत शिखर
5	श्री सुमतिनाथजी	वैशाख शुक्ला 8	अयोध्या	चैत्र शुक्ला 11	अयोध्या	चैत्र शुक्ला 9	सम्मेत शिखर
6	श्री पद्मप्रभस्वामीजी	कार्तिक कृष्णा 12	कोशाम्बी	चैत्री पूर्णिमा	कौशम्बी	मिगसर कृष्णा 11	सम्मेत शिखर
7	श्री सुपार्श्वनाथजी	ज्येष्ठ शुक्ला 12	वाराणसी	फाल्गुन कृष्णा 6	काशी	फाल्गुन कृष्णा 7	सम्मेत शिखर
8	श्री चन्द्रप्रभस्वामीजी	पौष कृष्णा 12	चन्द्रपुरी	फाल्गुन कृष्णा 7	चन्द्रपुरी	भाद्रपद कृष्णा 7	सम्मेत शिखर
9	श्री सुविधिनाथजी	मिगसर कृष्णा 5	काकन्दी	कार्तिक शुक्ला 3	काकंदी	भाद्रपद शुक्ला 9	सम्मेत शिखर
10	श्री शीतलनाथजी	माघ कृष्णा 12	भद्दिलपुर	पौष कृष्णा 14	भद्दिलपुर	वैशाख कृष्णा 2	सम्मेत शिखर
11	श्री श्रेयांसनाथजी	फाल्गुन कृष्णा 12	सिंहपुरी	माघ कृष्णा 30	सिंहपुरी	सावन कृष्णा 3	सम्मेत शिखर
12	श्री वासुपूज्यस्वामीजी	फाल्गुन कृष्णा 14	चंपापुरी	माघ शुक्ला 2	चंपापुरी	आषाढ़ शुक्ला 14	चंपापुरी
13	श्री विमलनाथजी	माघ शुक्ला 3	कंपिलाजी	पौष शुक्ला 6	कम्पिलाजी	आषाढ़ कृष्णा 7	सम्मेत शिखर
14	श्री अनन्तनाथजी	वैशाख कृष्णा 13	अयोध्या	वैशाख कृष्णा 14	अयोध्या	चैत्र शुक्ला 5	सम्मेत शिखर
15	श्री धर्मनाथजी	माघ शुक्ला 3	रत्नपुरी	पौष पूर्णिमा	रत्नपुरी	ज्येष्ठ शुक्ला 5	सम्मेत शिखर
16	श्री शांतिनाथजी	ज्येष्ठ कृष्णा 13	हस्तिनापुर	पौष शुक्ला 9	हस्तिनापुर	ज्येष्ठ कृष्णा 13	सम्मेत शिखर
17	श्री कुंथुनाथजी	वैशाख कृष्णा 14	हस्तिनापुर	चैत्र शुक्ला 3	हस्तिनापुर	वैशाख कृष्णा 1	सम्मेत शिखर
18	श्री अरनाथजी	मिगसर कृष्णा 10	हस्तिनापुर	कार्तिक शुक्ला 12	हस्तिनापुर	मिगसर शुक्ला 10	सम्मेत शिखर
19	श्री मल्लिनाथजी	मिगसर शुक्ला 11	मिथिला	मिगसर शुक्ला 11	मिथिला	फाल्गुन शुक्ला 12	सम्मेत शिखर
20	श्री मुनिसुव्रतस्वामीजी	ज्येष्ठ कृष्णा 8	राजगृही	फाल्गुन कृष्णा 12	राजगृही	ज्येष्ठ कृष्णा 9	सम्मेत शिखर
21	श्री नमिनाथजी	श्रावण कृष्णा 8	मिथिला	मिगसर शुक्ला 11	मिथिला	वैशाख कृष्णा 10	सम्मेत शिखर
22	श्री नेमिनाथजी	श्रावण शुक्ला 5	सौरीपुर	आसोज अमावस्या	गिरनार	आषाढ़ शुक्ला 8	गिरनार
23	श्री पार्श्वनाथजी	पौष कृष्णा 10	वाराणसी	चैत्र कृष्णा 4	काशी (बनारस)	श्रावन शुक्ला 8	सम्मेत शिखर
24	श्री महावीरस्वामीजी	चैत्र शुक्ला 13	क्षत्रियकुण्ड	वैशाख शुक्ला 10	ऋजुवालुका नदी के किनारे	कार्तिक 30	पावापुरी

• काशी - बनारस - वाराणसी - वाणारसी - भदैनी या भेलुपुर भी कहते है।

2. काव्य संग्रह

A. प्रार्थना - नवपद प्रार्थना

(राग. बोधागाधं)

श्री अरिहंतो सकल हितदा उच्च पुण्योपकारा
सिद्धो सर्वे मुगतिपुरीना गामीने ध्रुव तारा

आचार्यों छे जिन धरमना दक्ष व्यापारी शूरा
उपाध्यायों गणधर तणा सूत्रदाने चकोरा

साधु आंतर अरि समूहने विक्रमी थइ य दंडे
दर्शन ज्ञान हृदय मलने मोह अंधार खंडे

चारित्र छे अघरहित हो जिंदगी जीव ठारें
नवपदमांहे अनुपम तप छे जे समाधि प्रसारे

वंदु भावे नवपद सदा पामवा आत्म शुद्धि
आलंबन हो मुज हृदयमां द्यो सदा स्वच्छ बुद्धि।

B. प्रभु सन्मुख बोलने की स्तुति

अरिहंत वंदनावली

च्यवन कल्याणक

जे चौद महास्वप्नों थकी निज माता ने हरखावता
वली गर्भमांहि ज्ञानत्रय ने गोपवी अवधारता।
ने जन्मतां पहेलां ज चोसठ इन्द्र जेहने वंदता
एवा प्रभु अरिहंत ने पंचागं भावे हुं नमुं ।।

जन्म कल्याणक :

महायोगना साम्राज्यमां जे गर्भमां उल्लासता,
ने जन्मता त्रण लोकमां महासूर्य सम परकाशता ।
जे जन्म कल्याणक वडे सौ जीव ने सुख अर्पता
एवा प्रभु अरिहंत ने पंचागं भावे हुं नमुं ।।

दीक्षा कल्याणक :

दीक्षा तणो अभिषेक जेनो योजता इन्द्रो मली
शिबिका स्वरूप विमानमां विराजता भगवंतश्री
अशोक पुन्नाग तिलक चंपा वृक्ष शोभित वन महीं
एवा प्रभु अरिहंत ने पंचागं भावे हुं नमुं ॥

केवल ज्ञान कल्याणक :

जे पूर्ण केवलज्ञान लोकालोकने अजवालतुं
जेना महा सामर्थ्य केरो पार को नव पामतुं
ए प्राप्त जेणे चार घाती कर्म ने छेदी कर्यु
एवा प्रभु अरिहंत ने पंचागं भावे हुं नमुं ॥

निर्वाण कल्याणक :

हर्षे भरेला देवनिर्मित अंतिम समवसरणे
जे शोभता अरिहंत परमात्मा जगतघर आंगणे
जे नाम ना संस्मरणथी विखराय वादल दुःखनां
एवा प्रभु अरिहंत ने पंचागं भावे हुं नमुं ॥

जे कर्म नो संयोग वलगेलो अनादि काल थी
तेथी थया जे मुक्त पूरण सर्वथा सद्भाव थी
रमी रह्या जे निजरूपमां सर्व जगनुं हित करे
एवा प्रभु अरिहंत ने पंचागं भावे हुं नमुं ॥

C. (अ) श्री चन्द्रप्रभ जिन चैत्यवंदन

लक्ष्मणा माता जनमीओ, महसेन जस ताय,
उडुपति लंछन दीपतो, चंद्रपुरीनो राय .1

दश लख पूरव आउखुं, दोढसो धनुषनी देह,
सुर नरपति सेवा करे, धरता अति ससनेह .2

चंद्रप्रभ जिन आठमा ए, उत्तम पद दातार,
पद्मविजय कहे प्रणमिये, मुज प्रभु पार उतार .3

(आ). श्री महावीरस्वामी जिन चैत्यवंदन

सिद्धारथ सुत वंदीये, त्रिशलानो जायो,
क्षत्रिय कुं डमां अवतर्यों, सुर–नर–पति गायो ॥ 1 ॥

मृगपति लंछन पाउले, सात हाथनी काय,
बहोंतर वरसनुं आउखुं, वीर जिनेश्वर राय ॥ 2 ॥

क्षमाविजय जिनराजनो, उत्तम गुण अवदात,
सात बोलथी वर्णव्यो, पद्मविजय विख्यात ॥ 3 ॥

D. (अ) श्री चंद्रप्रभ जिन स्तवन

चंद्रप्रभ चित्त मां वस्या रे, जीवन प्राण आधार
तुम विण को दिसे नहीं रे, भवि जनने हितकार... 1... चन्द्र

निशदिन सुता जागता रे, चित्त धरुं तारु ध्यान
रात दिवस तलसे सही रे, रसना तुज गुण गान... 2... चन्द्र

मारे तुम समको नहीं रे, मुज सरीखा तुज लाख
तो ही मुज सेवक गणी रे, कांई करुणा दाख... 3... चन्द्र

अंतर जामी तुं खरो रे, न गमे बीजी बात
सेवक अवसरे आवीयो रे, राखो अेहनी लाज... 4... चन्द्र

करुणा वंत कृपा करी ने, आपो निज पद वास रे
उदयरत्न ऐम उच्चरे..., दीजे तास सुवास रे... 5... चन्द्र

(आ). श्री महावीरस्वामी जिन स्तवन

दीन दु:खियानो तु छे बेली तु छे तारणहार
तारा महिमानो नहीं पार
राजपाट ने वैभव छोडी, छोडी दीधो संसार, तारा महिमाने ..... ॥ 1 ॥

चंडकोशीयो डसीयो ज्यारे, दूधनी धारा पगथी निकले
विषने बदले दुध ने जोईने, चंडकोशियो आव्यो शरणे
चंडकोशिया ने तें तारी, कीधो घणो उपकार, तारा महिमानो .... ॥ 2 ॥

कानमा खीला ठोक्या ज्यारे, थई वेदना प्रभु ने भारे
तो ओ प्रभुजी शांत विचारे, गोवालनो नहीं वांक लगारे
क्षमा आपीने ते जीवोने, तारी दीधो संसार, तारा महिमानो ..... ॥ 3 ॥

महावीर महावीर गौतम पुकारे, आँखो थी आंसु नी धारा बहावे
क्यां गया एकला मूकी मुजने, हवे नथी कोई जगमां मारे
पश्चाताप करतां–करतां, उपन्युं केवल ज्ञान, तारा महिमानो ...... ॥ 4 ॥

ज्ञान विमल गुरु वयणे आजे, गुण तमारा भावे गावे
थई सुकानी तुं प्रभु आवे, भवजल नैया पार लगावे
अरज अमारी उरमां धारी, वंदु वारंवार, तारा महिमानो ...... ॥ 5 ॥

E. (अ). श्री चंद्रप्रभ जिन स्तुति

सेवे सुर वृंदा, जास चरणारविंदा,
अट्ठम जिनचंदा, चंद वर्णे सोहंदा,
महसेन नृप नंदा, कापता दुःखदंदा,
लंछन मिष चंदा, पाय मानुं सेविंदा

(आ). श्री महावीरस्वामी जिन स्तुति

जय जय भवि हितकर, वीर जिनेश्वर देव,
सुरनरनां नायक , जेहनी सारे सेव।
करुणा रस कंदो, वंदो आणंद आणी,
त्रिशला सुत सुंदर, गुण मणि के रो खाणी ॥ 1 ॥

जस पंच कल्याणक, दिवस विशेष सुहावे ,
पण थावर नारक, तेहने पण सुख थावे।
ते च्यवन जन्म व्रत, नाण अने निर्वाण,
सवि जिनवर केरा, ए पांचे अहिठाण ॥ 2 ॥

जिहां पंच समिति युत, पंच महाव्रत सार,
जेहमां परकाश्या, वली पांचे व्यवहार।
परमेष्ठि अरिहंत, नाथ सर्वज्ञने पार,
एह पंच पदे लहयो, आगम अर्थ उदार ॥ 3 ॥

मातंग सिद्धाइ, देवी जिनपद सेवी,
दुःख दुरित उपद्रव, जे टाले नित मेवी।
शासन सुखदायी, आइ सुणो अरदास
श्री ज्ञान विमल गुण, पूरो वांछित आश ॥ 4 ॥

F. (अ) आप स्वभाव की सज्झाय

आप स्वभावमां रे, अवधू सदा मगन में रहना,
जगतजीव है कर्माधीना, अचरिज कछुअ न लीना आप..... ॥ 1 ॥

तुम नहीं केरा, कोई नहीं तेरा, क्या करे मेरा मेरा,
तेरा हे सो तेरी पासे, अवर सब हे अनेरा आप..... ॥ 2 ॥

वपु विनाशी, तुं अविनाशी, अब हे इनका विलासी,
वपु संग जब दूर निकासी, तब तुम शिव का वासी आप..... ॥ 3 ॥

राग ने रीसा दोय खवीसा, ए तुम दुःख का दीसा,
जब तुम उनकुं दूर करीसा, तब तुम जग का इसा आप..... ॥ 4 ॥

पर की आशा सदा निराशा, ये हे जगजनपासा,
ते काटनकुं करो अभ्यासा, लहो सदा सुखवासा आप..... ॥ 5 ॥

कबहीक काजी कबहीक पाजी, कबहीक हुआ अपभ्राजी ,
कबहीक जग में कीर्ति गाजी, सब पुद्‌गलकी बाजी आप..... ॥ 6 ॥

शुद्ध उपयोग ने समता धारी, ज्ञान ध्यान मनोहारी,
कर्म कलंककुं दूर निवारी, जीव वरे शिवनारी आप..... ॥ 7 ॥

3. जिन पूजा विधि

A. दस त्रिक सहित जिनमंदिर विधि

<u>दस त्रिक इस प्रकार है :</u> 1. निसीहि त्रिक, 2. प्रदक्षिणा त्रिक, 3. प्रणाम त्रिक, 4. पूजा त्रिक, 5. अवस्था त्रिक, 6. दिशात्याग त्रिक, 7. प्रमार्जना त्रिक, 8. आलंबन त्रिक, 9. मुद्रा त्रिक, 10. प्रणिधान त्रिक।

1. **निसीहि त्रिक :** श्री जिनेश्वर मंदिर के मुख्य द्वार में प्रवेश करते समय एक बार या तीन बार 'निसीहि, निसीहि, निसीहि' बोलना चाहिए।

<u>अ. प्रथम निसीहि :</u> अब आप घर संबंधी विचारों का, संसार संबंधी विचारों का, मन, वचन व काया से त्याग करते हैं। यह प्रथम निसीहि है। इसमें मंदिर संबंधी कार्य व आशातना मिटाने के लिये व्यवस्था करने की छूट रहती है।

<u>आ. द्वितीय निसीहि :</u> प्रभुजी की तीन प्रदक्षिणा देने के बाद और मंदिर संबंधी व्यवस्था का उचित निरीक्षण करके, अष्ट प्रकारी पूजा के लिये मूल गंभारे में प्रवेश करने से पूर्व दूसरी निसीहि बोली जाती है।

<u>इ. तीसरी निसीहि :</u> भगवान की प्रदक्षिणा व द्रव्य पूजा से निवृत्ति लेने हेतु चैत्यवंदन करने के पूर्व तीसरी निसीहि कही जाती है।

2. प्रदक्षिणा त्रिक : प्रभुजी की दाहिनी तरफ से ज्ञान, दर्शन, चारित्र इन तीन रत्नत्रयी की प्राप्ति के हेतु तीन प्रदक्षिणा दी जाती है। प्रदक्षिणा देते समय चार गति रूप संसार का भ्रमण तोड़ने के लिये, प्रभु से प्रार्थना रूप स्तुति पाठ करना चाहिये । इसी के साथ साथ मंदिर संबंधी व्यवस्था का सूक्ष्म निरीक्षण भी करें, खास यह देखें कि मंदिरजी में कोई आशातना तो नहीं हो रही है। इस तरह अपनी दृष्टि नीचे रखते हुए तीन प्रदक्षिणा पूरी करनी चाहिये।

3. प्रणाम त्रिक : (अ) अंजलीबद्ध प्रणाम, (आ) अर्धावनत प्रणाम, (इ) पंचांग प्रणिपात प्रणाम।

<u>(अ) अंजलिबद्ध प्रणाम :</u> प्रभु के दर्शन होते ही सम्मानपूर्वक अपना सर झुकाकर दोनों हाथ जोड़कर 'नमो जिणाणं' कहना यह अंजलिबद्ध प्रणाम है।

<u>(आ) अर्धावनत प्रणाम :</u> प्रभुजी की तीन प्रदक्षिणा पूर्ण करने के बाद आधा शरीर झुकाकर दोनों हाथ जोड़कर तीन बार 'नमो जिणाणं' कहना, यह अर्धावनत प्रणाम है। इसके बाद ही प्रभुजी की स्तुति एवं अष्ट–प्रकारी पूजा की जाती है।

<u>इ. पंचांग प्रणिपात प्रणाम :</u> प्रभुजी की अष्टप्रकारी पूजा कर लेने के बाद चैत्यवंदन, स्तवन, स्तुति करने से पहले तीसरी निसीहि बोलकर अपने खेस से तीन बार भूमि प्रभार्जना करते हुए दोनों हाथ – घुटने और सिर यह पांच अंग जमीन से स्पर्श कराते हुए खमासमण देना पंचांग प्रणिपात प्रणाम कहलाता है।

4. पूजा त्रिक : इसके तीन प्रकार हैं। प्रथम (अ) अंग पूजा, (आ) अग्र पूजा और (इ) भाव पूजा। जो अलग-अलग, दिन में तीन बार 1. प्रातः 2. दोपहर के समय 3. शाम के समय की जाती है।

(अ) अंग पूजा : प्रभुजी के अंग को स्पर्श करके की जाने वाली पूजा जैसे जल, चंदन पुष्प, यह अंग पूजा है।

(आ) अग्र पूजा : धूप, दीपक, अक्षत, नैवेद्य व फल आदि से प्रभुजी की जो पूजा की जाती है, वह अग्र पूजा कहलाती है।

(इ) भाव पूजा : प्रभुजी के आगे चैत्यवंदन, स्तवन, स्तुति आदि करना यह भाव पूजा है।

नोट : जैन धर्म में भाव विहीन किसी भी धर्म क्रिया को मृतप्रायः एवं परिणाम शून्य माना गया है। भक्ति, ''भाव की उत्कृष्टता'' से ही फलती है। उत्तरोत्तर उत्तम भाव से प्रभु भक्ति करने वाला मात्र अन्तर्मुहूर्त में स्व आत्म कल्याण करने में सफल हो सकता है। यानि वह जन से जिनेश्वर बन सकता है।

त्रिकाल पूजा क्रम :

(क) प्रातः : अपनी अंग शुद्धि (हाथ पाँव धोना) करके शुद्ध वस्त्र पहनकर धूप, दीप, अक्षत पूजा, नैवेद्य पूजा एवं फल पूजा व चैत्यवंदन किया जाता है।

(ख) दोपहर के समय : अष्ट प्रकारी पूजा व स्नात्र पूजा महोत्सव दुपहर के समय होता है।

(ग) सायंकाल : शाम को आरती, मंगल दीप, धूप पूजा व दीप पूजा एवं चैत्यवंदन किया जाता है।

5. अवस्था त्रिक : इसके तीन भेद हैं (अ) पिंडस्थ अवस्था, (आ) पदस्थ अवस्था व (इ) रूपातीत अवस्था।

(अ) पिंडस्थ अवस्था : पिंडस्थ अवस्था के भी तीन भेद हैं जो निम्न प्रकार हैं :

(क) जन्म अवस्था : प्रभुजी का स्नात्र महोत्सव करते समय व पक्षाल करते समय हमारा यह चिंतन होना चाहिये कि, हे नाथ ! आपका जन्म होते ही 64 इन्द्र व 56 दिग्कुमारियों के सिंहासन चल यमान होते हैं। तब वे देवलोक से आकर आपका शुचिकर्म करते हुए जन्म महोत्सव करती हैं। तत्पश्चात् सौधर्म इन्द्र आपको मेरू शिखर पर ले जाते हैं। वहाँ सौधर्म इन्द्र स्वयं का अभिमान त्यागकर ऋषभ (बैल) रूप धारण कर अभिषेक करते हैं तथा एक करोड़ साठ लाख रत्न आदि जड़ित बड़े बड़े कलशों से देवगण अभिषेक करते हैं तो भी आपको जरा भी अभिमान नहीं हुआ। धन्य है आपकी लघुता । (8 जाति के 8000 कलश = 64,000X250 इन्द्र-इन्द्राणी आदि देवता=1,60,00,000)

(ख) राज्य अवस्था : हे नाथ ! आपको इतनी बड़ी राज्य संपत्ति और सत्ता मिलने पर भी आपको अंश मात्र राग नहीं हुआ, कमल की तरह निर्लिप्त रहे। धन्य है आपके वैराग्य को।

(ग) श्रमण अवस्था : धन्य है आपको, हे प्रभो ! आपने संपत्ति व सत्ता को एकदम त्याग करके कठोर तप, घोर-परिषह, उपसर्ग आदि सहन करने के लिए चारित्र ग्रहण किया।

(आ) <u>पदस्थ अवस्था :</u> हे प्रभु ! आप तो अवधिज्ञान से जानते ही थे कि मुझे केवलज्ञान प्राप्त होगा और मोक्ष में जाऊँगा, तो भी आपने चारित्र लेकर घोर तपस्या की। घोर उपसर्ग सहे। समतापूर्वक सहन करके चार घाती कर्मों का क्षय करके केवलज्ञान प्राप्त किया। तब देवताओं ने आकर समवसरण बनाया और उसे सुशोभित किया। तब आपने समवसरण में आकर के भव्य जीवों को बोध देने के लिये अमृत से भरी वाणी की वर्षा करके चतुर्विध संघ की स्थापना की। आपके अतिशय और वाणी के प्रभाव से अनेक पापी आत्माएं संसार समुद्र से तीर गये। पशु पक्षी भी अपना आपसी वैर भाव छोड़कर आपकी वाणी सुनने के लिये आते हैं। हर प्राणी ने अपनी-अपनी भाषा में प्रभु की देशना सुनी और अपनी-अपनी शंकाओं का समाधान पाया।

(इ) <u>रूपातीत अवस्था :</u> आपके केवलज्ञान प्राप्त करने के बाद भव्य जीवों के उपकार के लिये देशना देकर बाकी के अघाती कर्मों का नाश करके, आपने सिद्ध अवस्था को प्राप्त कर लिया। अब आप निराकार, अशरीरी, अनंतज्ञानी, अनन्त सुखी हुये एवं जन्म, मरण, रोग, शोक, दरिद्रता आदि से रहित हो गये हैं अब आप कृतकृत्य हो गये हैं। अब आपको कुछ भी करना शेष नहीं। हमें भी ऊपर मुजब पिंडस्थादि अवस्थाओं का चिंतन करके प्रभु गुणों को प्राप्त करना है। यानि प्रभु जैसी अवस्थाएं हमें भी प्राप्त करनी है।

6. दिशात्याग त्रिक : प्रभुजी के आगे चैत्यवंदन स्तवन स्तुति करते समय मन, वचन, काया की एकाग्रता रखने के लिये आस-पास ऊपर या पीछे तीन दिशाओं का त्याग करना, यानि अन्य तीन दिशाओं में नहीं देखना। तथा प्रभु भक्ति में ही मन लगाना।

7. प्रमार्जन त्रिक : चैत्यवंदन करने के पहले तीन बार अपने खेस से भूमि को साफ करना प्रमार्जना त्रिक कहलाता है। उपलक्षण से साथिया करने बैठते समय, और भी कुछ कारणवश बैठते समय तीन बार प्रमार्जना करना।

8. आलंबन त्रिक : (अ) वर्णालंबन, (आ) अर्थालंबन, (इ) प्रतिमा आलंबन

(अ) <u>वर्णालंबन :</u> वचनों द्वारा सूत्रों को शुद्ध और सही रूप से बोलना

(आ) <u>अर्थालंबन :</u> मन द्वारा सूत्रों के अर्थ का चिंतन करना। जिससे प्रभु भक्ति में एकाग्रता आती है

(इ) <u>प्रतिमा आलंबन :</u> प्रभु की प्रतिमा को साक्षात जिनेश्वर भगवान मानना

9. मुद्रा त्रिक : (अ) योग मुद्रा, (आ) जिन मुद्रा, (इ) मुक्ता शुक्ति मुद्रा

(अ) <u>योग मुद्रा :</u> चैत्यवंदन करते समय नमुत्थुणं आदि सूत्र बोलते समय दोनों हाथ जोड़कर, अंगुलियों को आपस में मिलाकर हाथ की कोहनी को नाभि के स्थान पर रखकर दोनों पैर के घुटने जमीन पर रखना या बांया घुटना खड़ा रखना यह योग मुद्रा है।

(आ) <u>जिन मुद्रा :</u> काऊसग्ग करते समय पैर के आगे के भाग में चार अंगुल और पीछे के भाग में चार

अंगुल से कुछ कम अन्तर रखना। दोनों हाथ लटकते हुए रखना तथा अपनी दृष्टि जिन प्रतिमाजी की तरफ या स्वयं की नाक पर रखना यह जिन मुद्रा है।

(इ) मुक्ता शुक्ति मुद्रा : 'जावंति चेइआइं, जावंत केवि साहू' और 'जय वीयराय' सूत्र, (आभवमखंडा तक) बोलते समय दोनों हाथ ललाट पर रखना। दोनों हाथों की अंगुलियों को आपस में मिलाना और हाथ के अंदर का भाग मोती के सीप की तरह पोला रखना। यह मुक्ता शुक्ति मुद्रा है।

10. प्रणिधान त्रिक : मंदिरजी में जिन भक्ति करते समय मन, वचन और काया की एकाग्रता रखना प्रणिधान त्रिक कहलाता है।

B. पूजा सम्बन्धी उपयोग

(1) फण को प्रभु का शिखा रूप अंग समझकर शिखा पूजा के साथ ही अनामिका अंगुली से पूजा करना उचित है और न करे तो भी दोष नही हैं।

(2) लंछन एवं अष्ट मंगल की पूजा नहीं करना।

(3) परमात्मा के परिकर में रहे हुए देवी देवता की भी पूजा न करे।

(4) सिद्धचक्रजी की पूजा के बाद भी अरिहंत की पूजा कर सकते हैं।

(5) देवी-देवता अपने साधर्मिक होने से उनको अंगुठे से सिर्फ ललाट पर ही तिलक करें, प्रणाम करें। परन्तु वंदन, खमासमण व चैत्यवंदन न करें।

(6) मुखकोश गम्भारे के बाहर ही नाक तक बांधकर, फिर निसीहि बोलकर गंभारे में प्रवेश करना।

(7) भाईयों को परमात्मा की पूजा धोती एवं खेस पहनकर, खेस से ही मुख बांधकर पूजा करनी एवं बहनें कम से कम 15 वर्ष के ऊपर हो जाये तो साड़ी पहनकर सिर ढंककर पूजा करें।

(8) पुरुष परमात्मा के दायी (राईट) और स्त्री बायी (लेफ्ट) तरफ खड़े रहकर स्तुति, पूजा, दर्शन वगैरह करे।

(9) गंभारे में मौन रहें, दोहे मन में बोलेएवं स्तवन, स्तुति अकेले बोले तो धीरे-धीरे मधुर स्वर से बोलें।

(10) चैत्यवंदन में स्तवन, स्तुति मध्यम स्वर में बोले, जिनसे दूसरों को अंतराय न हो।

(11) प्रभु के विनय हेतु फल-फूल आदि पूजन सामग्री मंदिर में लेकर जाना, खाली हाथ नहीं जाना। लेकिन अपने खाने की वस्तु नहीं लेकर जाना।

(12) प्रभु को अपने हाथ में बंधी रक्षा पोटली, ब्रासलेट, चूडियाँ, खेस, साड़ी जैसी कोई भी वस्तु न छुअें उसका विवेक रखें।

(13) प्रभु के साईड में खडे रहकर पूजा करें, जिससे औरो को दर्शन में अंतराय न हो।

4. ज्ञान

A. पाठशाला

बच्चों ! पाठलाशा तो धर्म के संस्कार प्राप्त करने के लिए विशेष साधन है, उसमें छोटे–बडे सभी को नित्य जाना चाहिये और समय पर पहुँचना चाहिये। स्कूल–कॉलेजों में तो पेट भरने व पैसे कमाने की शिक्षा और संस्कारों का नाश करने वाला ज्ञान प्राप्त होता है, फिर भी वहाँ सभी शिक्षा प्राप्त करने के लिए जाते है। पाठशाला में आत्मा को गुणों से भरने की शिक्षा, सच्चा ज्ञान और आत्मा के कल्याण का ज्ञान मिलता है फिर भी यहाँ कम आते है। स्कूल में हजारों रुपयों के डोनेशन देते समय–माता–पिता विचार नहीं करते एवं इस विषैले ज्ञान के लिये ट्यूशन, रिक्षा किराया, फीस के पैसे भी भरने पडते है, जबकि पाठशाला में तो न किसी प्रकार की फीस या न किसी प्रकार का डोनेशन। फिर भी स्कूल में पढने के लिए सभी जाते है, परंतु पाठशाला में नहीं।

स्कूल में सच्चा ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता। सच्चा ज्ञान अर्थात् जिसके माध्यम से आत्मा का परिचय हो, पाप–पुण्य का विवेक समझ में आए, परलोक की चिंता, वैराग्य भाव पैदा हो, वही सच्चा ज्ञान कहलाता है। उससे जो विपरित होता है वह मिथ्याज्ञान कहलाता है ! सच्चा ज्ञान ही प्रकाश है, यही जीवन है, यही परम शक्ति है, सच्चा ज्ञान तृतीय नेत्र है, ऐसे ज्ञान से ही जीवन में सुख–शांति समाधि की प्राप्ति होती है। **धन की रक्षा आपको करनी पडती है, जबकि सच्चा ज्ञान आपकी रक्षा करेगा...**

पढना गुणना सबही झूठा, जब नहिं आतम पिछाना,
वर विना क्या जान तमाशा, लूण (नमक) विण भोजन कुं रवाना ।।

ज्ञान भोग प्राप्ति का नहीं, बल्कि ज्ञान तो भगवान को प्राप्त करने का साधन है।

पढमं णाणं तओ दया– प्रथम ज्ञान होना आवश्यक है, फिर दया का पालन हो सकता है, वरना जाने बिना दया पालन कैसे संभव है ? अत: बडे होने के बाद भी पाठशाला में जाना चाहिये, वहाँ जाने में शर्म नहीं रखनी चाहिये। हमें तो ज्ञान लेना है। बडे हो जाने के बाद क्या स्कूल कॉलेज नहीं जाते ! वहाँ शर्म नहीं आती, तो फिर यहाँ शर्म क्यों आती है ?

माता–पिता को अपनी संतान को समझा बुझाकर पाठशाला में भेजने के लिये विशेष ध्यान रखना चाहिये। स्कूल भेजने के लिये माता–पिता ध्यान रखते है, कितना परिश्रम उठाते है, उसी प्रकार पाठशाला भेजने में भी वैसा ही आचरण करना चाहिये, क्योंकि आज विष को उगलनेवाले टी.वी., विडियो–रेडियो व मोबाइल द्वारा वातावरण विकृत और खराब हो रहा है। उसे थोडे अंश में निर्मूल करने वाली पाठशाला है, जहाँ संस्कार सिंचन हो सकता है। साथ ही बालक के प्रारंभिक जीवन में थोडे वर्षों तक संस्कार डाले जाएँ, तो संपूर्ण जीवन सुधर सकता है तथा दूसरों को भी सुधार सकता है। एक ज्योति से दूसरी ज्योति जल उठती है।

आज के बच्चे भविष्य के रक्षक हैं। उनके ऊपर जैन संघ की, समाज की जवाबदारी आने वाली है। यदि उनकें सुसंस्कार नहीं होंगे तो वे उस जवाबदारी को कैसे सम्हाल सकेंगे?

अतः बच्चों ! आपका जीवन कोरी स्लेट जैसा है, उस पर धार्मिक शिक्षण का प्रारंभ होना महत्त्व की बात है।

प्राचीन काल में घर ही पाठशाला थी। माता–पिता ही बच्चे के शिक्षक थे और परिवार उस विद्यार्थी का कक्षावर्ग था, परंतु आधुनिक शिक्षा का वातावरण सृजित होने व डिग्रियों के प्रसार ने बच्चों के सच्चे शिक्षक का उत्तरदायित्व निभाना माता–पिता भुल गए। अब तो स्कूल–कॉलेजों में शिक्षण के नाम पर विष परोसा जा रहा है। आधुनिक शिक्षा का परलोक–पुण्य–पाप–जैसी नैतिक धर्म की बातों के साथ कुछ भी संबंध नहीं है। ऐसी सीख–सलाह स्कूल के भारी भरकम पाठ्यक्रम और पुस्तकों में कहीं भी देखने को नहीं मिलेगी। माता–पिताओं ! आपने जिन्हें लालन–पालन करके बडा किया वे बच्चें आपको लात मारें, फिर भी आप आधुनिक शिक्षण के गुणगान करना नहीं छोडते। ऐसी शिक्षा के प्रति आपका कितना अंधा अनुराग है ? ऐसा ज्ञान प्राप्त करके आपकी संताने आपकी न रह पाएं, यह आप सहन कर सकते हैं, परंतु सम्यग्ज्ञान प्राप्त करके साधु बन जाएँ, यह आपको जरा भी बर्दाश्त नहीं। आपका पुत्र आपको पैसे कमाकर ले आएँ, इतना ही आप चाहते हो।

पाठशाला धार्मिक संस्कारों का केन्द्र है। मानव जीवन का मूल्य समझाने वाली शिक्षिका है। अहिंसा का पाठ पढाने वाली शिक्षा का केन्द्र है। बालक–बालिकाओं का जीवन निर्माता शिल्पकार है। भवसागर तैरने की शिक्षा देने वाला शिक्षक है, विनय, विवेक–वैराग्य–विरक्ति धर्म का पाठ पढाने वाला प्रिन्सिपल है, बुरी आदतों –दुर्गुणों से बचाने वाला कल्याण मित्र है।

अतः हे बच्चों ! आप लोग ऐसी पाठशाला में पढने के लिए प्रतिदिन अवश्य जाना, क्योंकि धार्मिक शिक्षण से हित–अहित, लाभ–हानि, भक्ष्य–अभक्ष्य, पीने योग्य–न पीने योग्य, करने योग्य–न करने योग्य कार्यों की जानकारी प्राप्त होती है।

1. जिस प्रकार आप स्कूल में पढने, कैसे तैयार होकर जाते हो, उसी प्रकार तैयार होकर पाठशाला मे जाना चाहिए।
2. पाठशाला में प्रवेश करने पर शिक्षक बैठे हो तो उनके चरणस्पर्श करके प्रणाम करें।
3. यदि शिक्षक आये नहीं हो, तो जब वे बाहर से आएं तब सभी बालक एक साथ खडे होकर उन्हें हाथ जोडकर प्रणाम करें। इसी प्रकार घर पर लौटते समय भी पुनः प्रणाम करें।
4. पाठशाला में पढो तब कुछ भी खाना पीना नहीं।
5. शिक्षक के सामने न बोलें, उनका अपमान न करें, अपमान करने से हमें ज्ञान नही चढता।
6. पाठशाला में किसी के साथ शैतानी, मस्ती–लडाई–झगडा न करें, न किसी को अपशब्द कहें।

7. तत्पश्चात् गाथा कंठस्थ करने का काम शुरू करते समय कमर को सीधी करके तनकर बैठे, मस्तक का एंटीना सीधा हो तो सूत्र ग्रहण होता है और स्मरण शक्ति बढती है। उसके बाद बाँए हाथ से दाहिने पाँव का अंगूठा पकडें, फिर गाथा का रटन करें, तो जल्दी याद होगी।

8. पाठशाला में प्रतिदिन कम से कम एक गाथा तो अवश्य की जाए और पुराने सूत्रों का पुनरावर्तन करें।

9. गाथा रटने पर भी याद न हो तो उकताएँ नहीं, परंतु परिश्रम जारी रखें, भले ही गाथा कंठस्थ न हो पाए फिर भी धार्मिक ज्ञान पढने से आठ कर्मों का नाश होता है। जैसे माष्तुष मुनि को ज्ञान नहीं चढता था, फिर भी परिश्रम जारी रखा तो एक ही पद 12 वर्ष तक रटते-रटते इतने कर्मों का नाश हुआ कि उन्हें केवलज्ञान की प्राप्ति हो गई

10. ज्ञान की आराधना के लिये प्रतिदिन कम से कम ज्ञान के दोहे बोलकर पाँच खमासमण दें, और ज्ञान का पाँच या इकावन लोगस्स का कायोत्सर्ग (काउस्सग्ग) करें तथा निम्नलिखित मंत्र का अपनी शक्ति के अनुसार जाप करें, जिससे हमें ज्ञान शीघ्र चढ पाए।

11. A. ॐ ह्रीँ नमो नाणस्स

 B. ॐ ह्रीँ नमो उवज्झायाणं (108 बार) जाप करें।

 C. श्री वज्रस्वामिने नमः (108 बार जाप) जिससे विद्या ज्ञान की वृद्धि और बुद्धि निर्मल बनती है।

 D. महोपाध्याय श्री यशोविजय सद्गुरुभ्यो नमः (12 बार जाप करें) जिससे ज्ञान की प्राप्ति होती है।

 E. ॐ ह्रीँ श्री ऐं नमः

 F. श्री सरस्वती देव्यै नमः

 G. ॐ ह्रीँ श्री वद वद वाग्वादिनी वासं कुरु-कुरु स्वाहा (12 अथवा 108 बार जाप करें।)

12. इस जाप के सिवाय स्मरण शक्ति बढाने के लिए उपाय-

 A. तली हुई वस्तुओं का अधिक उपयोग न करें।

 B. तम्बाकू-बीडी-शराब से दूर ही रहें।

 C. रात्रि में देर तक जागना नहीं।

 D. अत्यधिक न खाएँ।

 E. विद्यार्थी जीवन में शील व्रत (ब्रह्मचर्य) का पालन करें।

 F. जो पूर्व में पढा हुआ हो उसका चिंतन मनन करें।

 G. 17 से 24 वर्ष की आयु के दौरान विद्यार्थी यदि संयम से जीवन यापन करें तो मानसिक बल-बुद्धि से बहुत ही प्रखर हो सकते है।

5. नवपद

A. नमस्कार महामंत्र

प्रश्न: नमस्कार महामंत्र सूत्र का नाम पंचपरमेष्ठि सूत्र क्यों है ?

उत्तर: इस सूत्र में पाँच परमेष्ठि भगवंतों को नमस्कार किया गया है। इसलिए इस सूत्र का नाम पंचपरमेष्ठि नमस्कार सूत्र है।

प्रश्न: पाँच परमेष्ठि में कौन कौन आते है ?

उत्तर: पाँच परमेष्ठि में अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु भगवंत आते है।

प्रश्न: नमस्कार याने क्या ?

उत्तर: नमस्कार याने नमन करना, मस्तक झुकाना, प्रणाम करना, दो हाथ जोडकर वंदन करना आदि। इसे क्रियात्मक (दिव्य) नमस्कार कहा जाता है। यह करते वक्त हृदय में अत्यंत बहुमान, आंतरिक प्रीति और मन का लगाव होना चाहिए। उल्लास-उमंग भक्ति -बहुमान भाव पूर्वक किए हुए नमन को भाव नमस्कार कहा जाता है।

प्रश्न: परमेष्ठि किसे कहते है ?

उत्तर: इस लोक में रहे हुए सर्वश्रेष्ठ व्यक्तियों को परमेष्ठि कहते है। उनसे बढकर और कोई नहीं हो सकता। अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु भगवंत इस लोक के सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति है क्योंकि वे उत्तम गुणों के स्वामी है। वे संसार के विषय कषायों से अलिप्त है। और निजध्यान में लीन है।

प्रश्न: परमेष्ठि भगवंतों को नमस्कार करने से क्या लाभ होता है ?

उत्तर: पानी चाहिए तो पानी से भरे घडे के पास जाना पडता है। कपडे चाहिए तो कपडे की दुकान में जाना पडता है। उसी तरह जिसे सद्गुण प्राप्त करने की इच्छा होती है उसे सद्गुणों के स्वामी के पास जाना पडता है।

इस दुनिया में देखा जाएं तो धन की इच्छा वाला व्यक्ति धनवान के पीछे दौडता है। सत्ता/कुर्सी की इच्छा वाला व्यक्ति मंत्री/राजनेता के पीछे घूमता है। यदि हमें पुण्य चाहिए, गुण चाहिए, शुद्धि चाहिए तो, पुण्य, गुण और शुद्धता के स्वामी परमेष्ठि भगवंतों की सेवा करनी चाहिए। उनके चरणों में झुकना चाहिए। उन्हें भावपूर्वक नमस्कार करना चाहिए। ऐसा करने से हम भी एक दिन उनकी तरह पुण्य, गुण और शुद्धता के स्वामी बनेंगे।

प्रश्न: पाँच परमेष्ठियों में से प्रथम परमेष्ठि अरिहंत किसे कहा जाता है ?

उत्तर: अरि = शत्रु ; **हंत** = नाश करने वाले

शत्रुओं का नाश करने वाले अरिहंत कहलाते है। शत्रु याने लोग जिन्हें शत्रु मानते है, वो नहीं। लेकिन राग-द्वेष रुपी आत्मा के शत्रु। आत्मा के सचे शत्रु तो राग-द्वेष आदि दुर्गुण ही है। वे आत्मा को

संसार में भटकाते है। आत्मा को दु:खों की आग में झोंकते है। ऐसे राग–द्वेष आदि दुर्गुण रुपी शत्रुओं को जिन्होंने नाश कर लिया है उन्हें अरिहंत कहते है।

अरिहंत को अर्हंत भी कहा जाता है। जो चौंतीस (**34**) अतिशयों से सुशोभित है, देव–देवेन्द्रों से पूजित है, बारह (**12**) गुणों से युक्त है वे अरिहंत भगवंत कहलाते है। उन्होंने आठ कर्मों में से चार घाती कर्म का नाश किया है।

प्रश्न: आठ कर्म कौन कौन से ? घाती कर्म याने क्या ?

उत्तर: पूरे विश्व का संचालन कर्म करते है। जो जीव जो **कर्म** बांधता है उसे ही वह **कर्म** भुगतना पडता है। उन कर्मों के कारण जीव को दु:खमय संसार में भटकना पडता है। उन कर्मों का नाश करने से मोक्ष प्राप्त होता है।

कर्म आठ प्रकार के होते है :

1. ज्ञानावरणीय कर्म	**2. दर्शनावरणीय कर्म**	**3. वेदनीय कर्म**	**4. मोहनीय कर्म**
5. आयुष्य कर्म	**6. नाम कर्म**	**7. गोत्र कर्म**	**8. अंतराय कर्म**

इस आठों कर्मों को याद रखने के लिए एक छोटी सी कहानी है। **ज्ञानचंद** सेठ **दर्शन** करने गए। रास्ते में **वेदना** हुई। सामने **मोहनभाई** वैद्य मिले। वैद्यराज, मुझे दवा नहीं दी तो मेरा **आयुष्य** पूरा हो जाएगा। वैद्य ने कहा की भगवंत का **नाम** लो, **गोत्र** देवता को याद करो। आपके सभी **अंतराय** दूर हो जाएंगे।

इस कहानी में बडे किए गए शब्द आठ कर्मों के नाम है।

आत्मा के मूलगुणों पर जो सीधा प्रहार करके उन गुणों का जो नाश करते है उन्हे घाती कर्म कहते है।

1. ज्ञानावरणीय 2. दर्शनावरणीय 3. मोहनीय 4. अंतराय

– यह चार कर्म आत्मा के मूल गुणों पर सीधा प्रहार करते है इसलिए इन्हें **घाती कर्म** कहते है।

1. वेदनीय 2. आयुष्य 3. नाम 4. गोत्र

– यह चार **अघाती कर्म** है क्योंकि ये आत्मा के मूलगुणों पर सीधा प्रहार नहीं कर सकते।

जिन्होंने चारों **घाती कर्मों** का संपूर्ण नाश कर लिया हो और जो **12 गुणों** से युक्त है वे अरिहंत कहलाते है।

प्रश्न: अरिहंत भगवंत के बारह गुण कैसे ?

उत्तर: अरिहंत भगवंत के बारह गुण दो विभागों में बांटे जा सकते है। **आठ प्रातिहार्य** और **चार अतिशय**

प्रातिहारी याने अंगरक्षक (**Body Guards**)। जो जो वस्तु अरिहंत भगवंत के साथ साथ रहे उन्हें प्रातिहार्य कहते है। अरिहंत परमात्मा जहां जहां विचरते है वहां वहां आठ वस्तुएँ उनके साथ रहती है। वे आठ वस्तुएँ प्रातिहार्य कहलाती है।

इस दुनिया में अन्य किसी के भी पास न हो, ऐसी विशिष्टता अरिहंत परमात्मा के पास होती है।

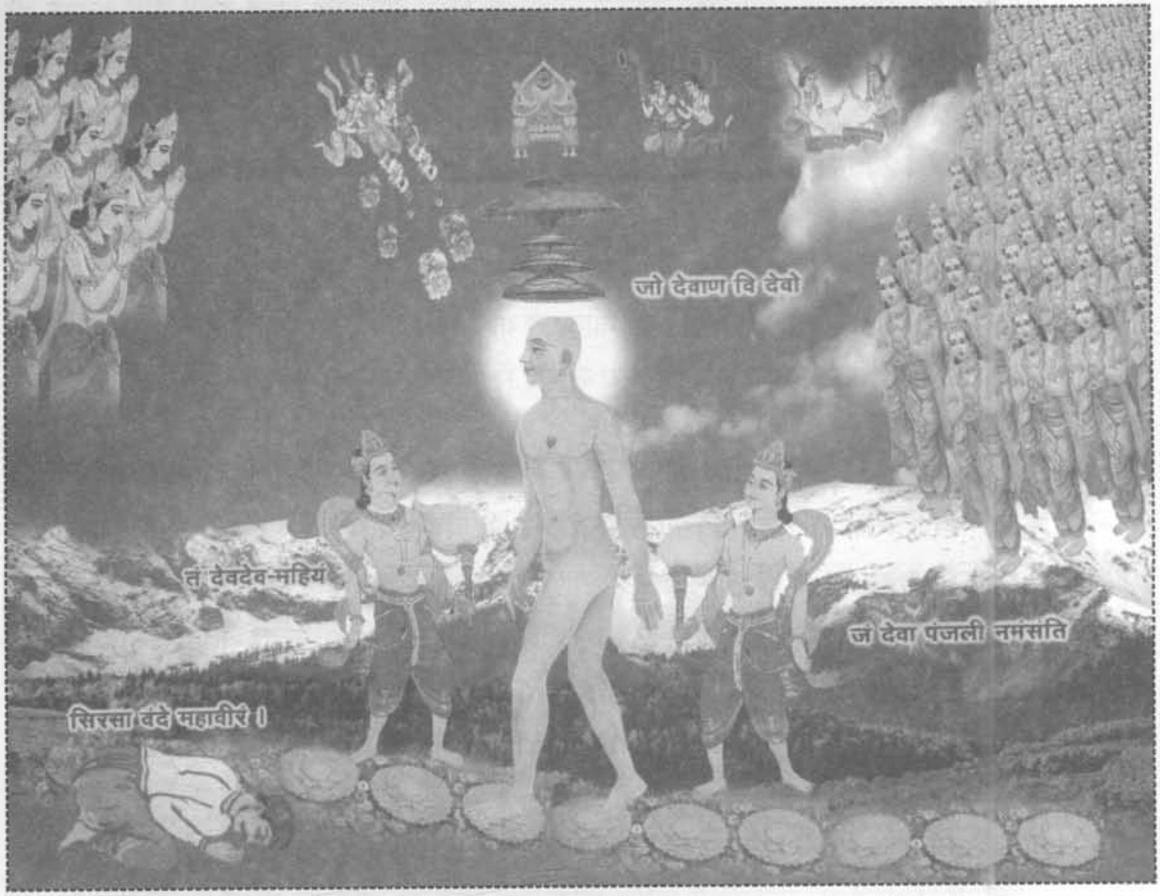
जो देवाण वि देवो
तं देवदेव-महियं
जं देवा पंजली नमंसति
सिरसा वंदे महावीरं ।

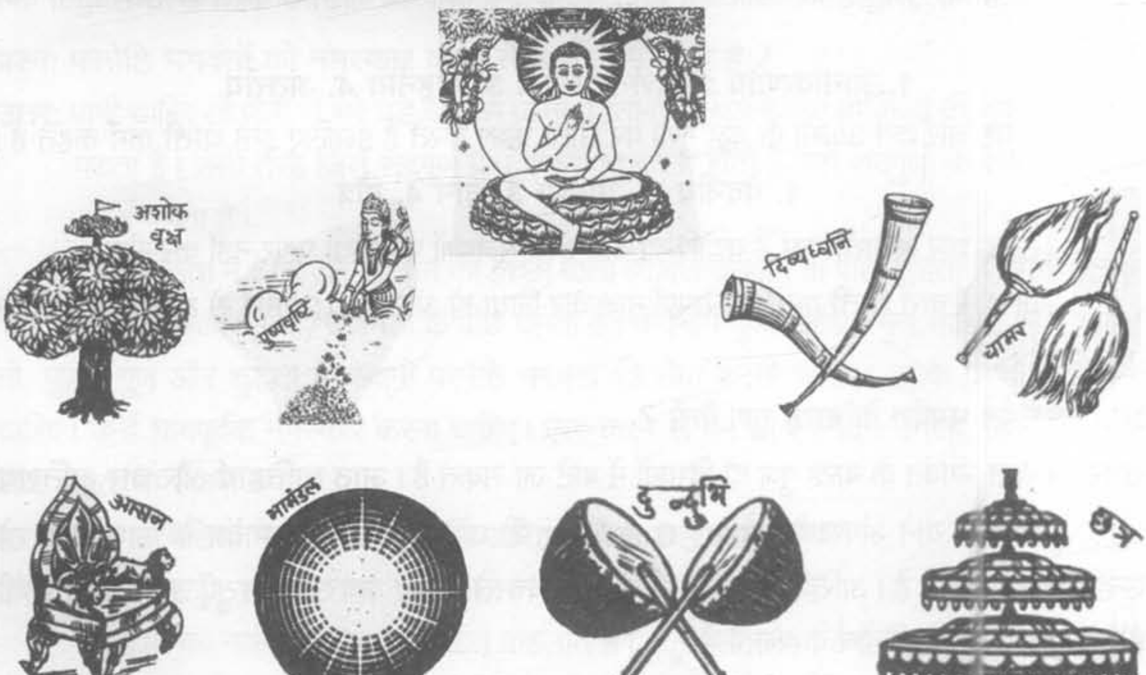
अशोक वृक्ष
पुष्पवृष्टि
दिव्यध्वनि
चामर
आसन
भामंडल
दुन्दुभि
छत्र

जो अतिशय के रुप में कहलाती है।

आठ प्रातिहार्य और चार अतिशय मिलकर अरिहंत भगवान के बारह गुण होते है।

12 गुण = **8 प्रातिहार्य + 4 अतिशय**

प्रश्न: आठ प्रातिहार्य कहां और कैसे होते है ?

उत्तर: देशना देने के लिए देव भक्ति से तीन गढ़ का समवसरण रचते है। सबसे नीचे वाहनों के लिए चाँदी का गढ़, उसके उपर पशु–पक्षियों के लिए सोने का गढ़ और सबसे उपर देव और मनुष्यों के लिए रत्न का गढ़ होता है। चाँदी के गढ़ के चारों ओर दस–दस हजार सीढ़ियाँ होती है। सोने और रत्न के गढ़ के चारों ओर पाँच–पाँच हजार सीढ़ियाँ होती है। इस प्रकार चारों ओर बीस–बीस हजार सीढ़ियाँ होने से समवसरण में कुल 80 हजार सीढ़ियाँ होती है।

10,000 + 5000 + 5000 सीढ़ियाँ = 20,000 सीढ़ियाँ

20,000 सीढ़ियाँ x 4 ओर = 80,000 सीढ़ियाँ

आठ प्रातिहार्य इस प्रकार से होते है :

1. **अशोक वृक्ष:** पूरे समवसरण को ढक दे ऐसा घटादार वृक्ष समवसरण के बीचो–बीच होता है जो भगवान से 12 गुणा बडा होता है। उसके नीचे बैठकर भगवान देशना देते है।
2. **सुरपुष्पवृष्टि:** समवसरण की भूमि पर देव घुटने तक पैर ढक जाएं इतने पांच रंग के सुगंधी पुष्पों की वर्षा करते है।
3. **दिव्यध्वनी:** परमात्मा अर्धमागधी भाषा में मालकोष राग में देशना देते है तब आकाश में देव बांसुरी का मधुर स्वर बजाकर वातावरण को संगीतमय बनाते है।
4. **सिंहासन:** परमात्मा को बिराजमान करने के लिए देवता अशोकवृक्ष के नीचे चारों तरफ एक रत्नजडित सोने का सिंहासन बनाते है। पूर्व दिशा के सिंहासन पर परमात्मा बिराजमान होते है। बाकी की तीन दिशा में व्यंतर देव भगवान के तीन प्रतिबिंब बनाते है।

   सभी देव मिलकर भी परमात्मा के एक अंगूठे जितना भी रुप नहीं बना सकते ऐसा अद्‌भुत रुप परमात्मा का होता है। तो फिर परमात्मा की तीन प्रतिकृतियाँ देव कैसे बनाते है? लेकिन परमात्मा का प्रभाव अचिंत्य है। परमात्मा के प्रभाव से व्यंतरदेवों को भगवान के तीन प्रतिबिंब बनाने की शक्ति मिलती है।
5. **चामर:** समवसरण में चारों दिशाओं में बिराजमान भगवान को दो–दो देव रत्नजडित सोने की डंडीवाले चामर वींझते है। ये चामर चमरी गाय की पूंछ के बालों से बनते है। कुल चार जोडी याने आठ चामर होते है।
6. **भामंडल: भा** = तेज, प्रकाश ; **मंडल** = गोलाकार, मण्डली

   दोपहर बारह बजे क्या हम सूर्य के सामने देख सकते है ? देखने का प्रयास भी करे तो सूर्य के प्रकाश से हमारी आँखे जलने लगती है। और हम वहां से आँखे हटा लेते है।

तीन लोक के नाथ, परमपिता, अरिहंत परमात्मा का तेज सूर्य से भी ज्यादा होता है। तो ऐसे परमात्मा के सामने हम कैसे देख सकते है। इसलिए परमात्मा के पीछे देव भामंडल की रचना करते है। जिससे परमात्मा का तेज भामंडल में समा जाता है। इससे भगवान के पीछे चमकता हुआ गोलाकार बनता है। इस तरह भगवान को आसानी से देखा जा सकता है। समवसरण में चारों भगवान के पीछे एक-एक भामंडल होता है।

7. **देव-दुंदुभी:** परमात्मा की देशना से पहले आकाश में देव जोर-जोर से ढोल नगाडे बजाते है। मानो कि लोगों को देशना में आने के लिए आमंत्रित कर रहे हो। **हे भव्यजीवों ! मोक्षनगरी की तरफ ले जाने वाला सारथी यहां आया है। अगर आपको भी मोक्ष में जाना हो तो इस सारथी की भक्ति करो। सारथी याने परमात्मा की शरण में आओ।**

8. **तीन छत्र:** ऊर्ध्वलोक, अधोलोक और तिर्च्छालोक, इन तीन लोक के नाथ अरिहंत परमात्मा है। यह सूचित करने के लिए देव परमात्मा के ऊपर तीन छत्र बनाते है। चारों दिशा में तीन-तीन इस तरह कुल 12 छत्र होते है।

प्रश्न: चार अतिशय कौन कौन से ?

उत्तर: तीन लोक के नाथ देवाधिदेव परमात्मा के विशिष्ट पुण्य का प्रभाव जिसके माध्यम से पता चलता है उन्हें अतिशय कहते है।

*** चार अतिशय इस प्रकार से है :-**

1. **ज्ञानातिशय:** हम अपने सामने की तरफ देख सकते है, सिर हिलाए बिना पीछे नहीं देख सकते। टी.वी. में हम एक समय पर सिर्फ अमरीका में हो रही घटना को जान सकते है, लेकिन उसी समय रशिया में हो रही घटना को नहीं जान सकते । स्वर्ग और नरक तो वैज्ञानिक टेलीस्कोप की सहायता से भी नहीं देख सकते जबकि परमात्मा को जो केवलज्ञान प्राप्त हुआ है, उसके प्रभाव से वे स्वर्ग-नरक, इस लोक की तमाम घटनाएँ भूतकाल, वर्तमानकाल और भविष्यकाल की सभी घटनाएँ एक साथ एक समय में देख सकते है। कोई भी जानकारी उनसे छिपी नहीं रह सकती।

2. **वचनातिशय:** भगवान तो अर्धमागधी भाषा में देशना देते है। लेकिन भगवान की वाणी में ऐसा अतिशय होता है कि जिसके प्रभाव से उनकी वाणी सभी प्राणी अपनी-अपनी भाषा में समझ जाते है। देव-देवियों को देवों की भाषा में, पशु-पक्षियों को उनकी भाषा में और मानवों को अपनी-अपनी भाषा में परमात्मा की वाणी समझ में आ जाती है। भगवान की वाणी 35 गुणों से युक्त होती है।

3. **पूजातिशय:** परमात्मा का पुण्य इतनी ऊँची कक्षा का होता है कि मनुष्य, राजा, चक्रवर्ती, देव-देवेन्द्र आदि उनकी पूजा करने के लिए लालायित रहते है। देव समवसरण की रचना करते है। 19 प्रकार के अतिशय करते है। परमात्मा जब चलते है तो उनके पैर रखने के लिए देव नौ सुवर्ण कमलों की रचना करते है। पक्षी परमात्मा को प्रदक्षिणा देकर आगे निकलते है। काँटे स्वयं उल्टे हो जाते है। वृक्ष

की डालियाँ परमात्मा को नमन करने के लिए नीचे झुकती है। अनुकूल हवा बहती है। छः ऋतु समकाल बन जाती है। इस तरह परमात्मा की हर कोई पूजा करता है।

4. अपाया-पगमातिशय: अपाय = तकलीफ, खतरा, कष्ट आदि ; **अपगम** = दूर होना

परमात्मा जहां विचरण करते है वहां सवा सौ योजन के दायरे में किसी को भी मारी-मरकी-रोग-उपद्रव, दुष्काल, अतिवृष्टि आदि मुशकिलें नहीं आती। जो रोग पहले से हो वे नष्ट हो जाते है। छः महीने तक नए रोग उत्पन्न नहीं होते।

इस प्रकार चार अतिशय और आठ प्रातिहार्य मिलकर अरिहंत परमात्मा के 12 गुण होते है। इनके विस्तार से वर्णन करने पर परमात्मा के 34 अतिशय भी दृष्टिगत होते है। इसका वर्णन हमारे **समवायांग सूत्र** नामक आगम शास्त्र में मिलता है।

प्रश्न: अरिहंत परमात्मा के 34 अतिशय कौन कौन से है ?

उत्तर: जन्म से 4, कर्मक्षय से 11 और देवों द्वारा किए गए 19 कुल =34 अतिशय

<u>जन्म से 4 अतिशय:</u>

अरिहंत परमात्मा को जन्म से ही चार अतिशय उत्पन्न होते है।

1. तीर्थंकर प्रभु का शरीर रोग, पसीने और मैल रहित होता है। उनका शरीर अत्यंत रुपवान होता है।
2. प्रभु का श्वासोश्वास कमल जैसा सुगंधी होता है।
3. प्रभु का माँस और रक्त गाय के दूध के समान सफेद होता है।
4. प्रभु का आहार-निहार अदृश्य होता है।

<u>कर्मों के क्षय से 11 अतिशय:</u>

अरिहंत प्रभु को ज्ञानावरणीय आदि कर्मों के क्षय होने से निम्न 11 अतिशय उत्पन्न होते है।

1. देवता एक योजन लंबा समवसरण बनाते है जिसमें करोडो देव आराम से समा सकते है।
2. प्रभु की वाणी अर्थगंभीर होती है जो एक योजन तक सुनी जा सकती है। देव, मनुष्य, पशु-पक्षी सभी अपनी अपनी भाषा में परमात्मा की वाणी समझ सकते है।
3. प्रभु के आसपास 125 योजन तक किसी को रोग नहीं होता।
4. जन्मजात शत्रुजन जैसे चूहा-बिल्ली अपनी दुश्मनी भूल जाते है।
5. चूहें इत्यादि अन्य प्राणियों का उपद्रव नहीं होता है।
6. मारी (प्लेग-कॉलेरा) आदि रोग नहीं होते।
7. अतिवृष्टि (बाढ) नहीं होती है।
8. अनावृष्टि (सूखा) नहीं होता है।
9. अकाल (अन्न-पानी का न मिलना) भी नहीं होता है।
10. स्वचक्र तथा परचक्र का भय नहीं होता है।
11. प्रभु के मस्तक के पीछे चमकता हुआ भामंडल होता है।

<u>देवों द्वारा किए गए 19 अतिशय:</u>

1. तीर्थंकर देव के ऊपर आकाश में चमकता हुए धर्मचक्र चलता है।
2. आकाश में और प्रभु के दोनो तरफ में सफेद चामर वींझायमान होते है।
3. आकाश में पादपीठ युक्त उज्ञवल सिंहासन चलता है।
4. भगवान के मस्तक के ऊपर तीन छत्र होते है।
5. आकाश में एक हजार योजन ऊँचा रत्नमय धर्मध्वज भगवान के आगे चलता है।
6. भगवान सोने के नौ कमलों पर चलते है।
7. देव चाँदी, सोना और रत्न का तीन गढ़ वाला समवसरण बनाते है।
8. पूर्व दिशा में स्वयं प्रभु बैठकर देशना देते है एवं बाकी तीन दिशा में देव प्रभु का प्रतिबिंब स्थापित करते है।
9. भगवान की ऊँचाई से 12 गुणा ऊँचा अशोक वृक्ष (चैत्य वृक्ष सहित) देव बनाते है।
10. देव दुंदुभी का नाद करते है।
11. भगवान को दाढी–मूंछ के बाल बढते नहीं।
12. कम से कम एक करोड देव भगवान के साथ होते है।
13. मार्ग में आने वाले कांटे उल्टे हो जाते है।
14. वृक्ष और डालियाँ झुककर नमन करते है।
15. अनुकूल पवन चलता है।
16. पक्षी प्रदक्षिणा करते है।
17. सभी ऋतु अनुकूल और मनोहर होती है।
18. सुंगधी जल की वृष्टि होती है।
19. छ: ऋतु के पंचरंगी दिव्य फूलों की वृष्टि होती है।

चौमासी चौदस के देववंदन के स्तवन में इन चौतीस अतिशयों को सुंदर रुप से समझाया गया है।

प्रश्न: अरिहंत परमात्मा का विशिष्ट गुण कौन सा ?

उत्तर: अरिहंत परमात्मा का विशिष्ट गुण है **मार्गोपदेशकता:** विश्व के जीवों के आत्मकल्याण का सच्चा मार्ग प्रभु उपदेश द्वारा बताते है। इसलिए वे जिनशासन की स्थापना करते है। जिनशासन रुपी तीर्थ की स्थापना करने से वे तीर्थंकर भी कहलाते है। संसार रुपी समुद्र में डूबते हम और आप जैसे जीवों को पार उतारने के लिए परमात्मा जिनशासन रुपी नाव का सहारा देते है जिसकी सहायता से अनेक जीव मोक्ष में पहुँचकर सच्चे सुख को प्राप्त करते है। इस तरह भगवान का **मार्गोपदेशकता** यह विशिष्ट गुण है।

प्रश्न: किसके प्रभाव से वे अरिहंत बनते है ?

उत्तर: पूर्व के तीसरे भव में उनके रोम–रोम में विश्व के सभी जीवों को सभी दुख, सभी पाप और वासनाओं से मुक्त बनाने की तीव्र इच्छा होती है। वीस स्थानक या किसी एक स्थानक की

आराधना करते समय उनके मन में यह भावना और भी उत्कृष्ट और तीव्र बन जाती है तब वे तीर्थंकर नामकर्म का बंध करते है। फिर देव या नारकी का भव करके अंतिम भव तीर्थंकर के रुप में शुरु होता है। इस भव में जब तीर्थंकर नामकर्म का उदय होता है। तब वे जिनशासन रुपी तीर्थ की स्थापना करते है।

वैसे उनमें रहा हुआ करुणा गुण जब पराकाष्टा तक पहुँचता है तब तीर्थंकर पद निश्चित हो जाता है। इसलिए सभी तीर्थंकरों की माता करुणा है, ऐसा कहा जाता है।

उनकी करुणा ऐसी अद्‌भुत होती है कि जिसके प्रभाव से अंतिम भव में उनके माँस और रक्त का वर्ण गाय के दूध जैसा सफेद होता है।

जिस तरह माता को अपने पुत्र के प्रति वात्सल्य होने से उसके स्तन का रक्त दूध बन जाता है, उसी प्रकार परमात्मा को विश्व के तमाम जीवों पर अपार वात्सल्य होने के कारण मात्र किसी एक अंग में नहीं बल्कि पूरे शरीर में खून के बदले दूध बहता है।

अरिहंत परमात्मा के इस अपूर्व वात्सल्य को सूचित करने के लिए अरिहंत पद का सफेद वर्ण होता है।

6. नाद-घोष

(दीक्षा सम्बन्धी)

1. दीक्षार्थी	:	अमर बनो
2. काजू, बादाम, पिस्ता	:	मुमुक्षु बेन (नाम) की दीक्षा
3. मोटर, गाडी, रिक्शा	:	मुमुक्षु बेन (नाम) की दीक्षा
4. मारी बेन दीक्षा ले छे	:	वाह भाई वाह, वाह भाई वाह
5. ओघो लेइने नाचे कौन	:	मुमुक्षु बेन, मुमुक्षु बेन
6. गोचरी लेवा जाशे कौन	:	मुमुक्षु बेन, मुमुक्षु बेन
7. धर्मलाभ आपशे कौन	:	मुमुक्षु बेन, मुमुक्षु बेन
8. संसार कालो नाग छे	:	संयम लीलो बाग छे
9. एक धक्का और दो	:	संसार को छोड दो
10. लेवा जेवुं शुं छे	:	संयम.... संयम...
11. छोडवा जेवुं शुं छे	:	संसार... संसार...
12. जय-जय कार, जय-जय कार	:	दीक्षार्थी की जय-जय कार
13. जब तक सूरज चांद रहेगा	:	दीक्षार्थी का नाम रहेगा

7. मेरे गुरू

गुरूवंदन

प्रश्न : गुरुवंदन के कितने प्रकार है और कौन-कौन से है?

उत्तर : गुरु वंदन के तीन प्रकार हैं :

1. फेटा वंदन : मस्तक झुकाकर साधु – साध्वी को मत्थएण वंदामि कहना, अथवा श्रावक-श्राविका परस्पर प्रणाम कहें।

2. थोभ वंदन : दो खमासमण, इच्छकार, अब्भुट्ठिओ पूर्वक साधु-साध्वीजी को यह वंदन किया जाता है। पुरूष साधुओं को एवं बहनें साधु-साध्वीजी भगवंत को यह वंदन करें।

3. द्वादशावर्त वंदन : दो वांदणा पूर्वक पदवीधर को यह वंदन किया जाता है।

प्रश्न : कौन से साधु वंदनीय हैं?

उत्तर : पाँच प्रकार के साधु वंदनीय हैं-

1. आचार्य : गण के नायक एवं अर्थ की वाचना देने वाले।

2. उपाध्याय : गण के नायक होने के लायक (युवराज के समान) एवं सूत्र की वाचना देने वाले।

3. प्रवर्तक : साधु भगवंतों को क्रिया-कांड में प्रवर्तानि वाले।

4. स्थविर : पतित परिणामी साधु को उपदेशादि से मार्ग में स्थिर करने वाले।

5. रत्नाधिक : ज्ञान, दर्शन, चारित्रगुण में जो अधिक है।

गृहस्थ की अपेक्षा से सभी साधु रत्नाधिक है। इनको वंदन करने से कर्मों की निर्जरा होती है।

प्रश्न : गुरू महाराज को कब वंदन नहीं करना चाहिए?

उत्तर 1. गुरु जब धर्म कार्य की चिंता में व्याकुल हों।

2. पराङ्मुख (उल्टे) बैठे हों।

3. क्रोध, निद्रा वगैरह प्रमाद में हों।

4. आहार-विहार-निहार (ठल्ला, स्थंडिल, मातरा) कर रहे हों या करने की इच्छा वाले हों, तब वंदन नहीं करना चाहिए।

प्रश्न : गुरु को कब वदंन करना चाहिए?

उत्तर : 1. गुरु जब प्रशांत चित्त वाले हों।

2. अपने आसन पर व्यवस्थित बैठे हो।

3. उपशांत हों।

4. वंदन करने वाले को धर्मलाभ आदि कहने के लिए उद्यत हो, उस समय गुरु की आज्ञा लेकर वंदन करना चाहिए।

प्रश्न : वंदन करने के कारण कौन – कौन से हैं?

उत्तर : वंदन करने के आठ कारण हैं –

1. प्रतिक्रमण : इसमें चार बार दो–दो वांदणे जो देते हैं, वे प्रतिक्रमण के लिए हैं।

2. स्वाध्याय : पढ़ाई या वाचना लेने से पूर्व वंदन करना चाहिए।

3. काउस्सग्ग : उपधान वगैरह में एक तप में से दूसरे तप में प्रवेश करने के लिए वंदन करना।

4. अपराध : अपराध की क्षमापना के लिए वंदन करना।

5. प्राहुणा : नये आए हुए साधु को वंदन करना।

6. आलोचना : पापों की आलोचना करने हेतु वंदन करना।

7. संवर : पच्चक्खाण लेने के लिए वंदन करना।

8. उत्तमार्थ : अनशन तथा संलेखणा अंगीकार करने के लिए वंदन करना।

प्रश्न : गुरुवंदन करते समय कितने दोष टालने चाहिए? उसमें से कुछ दोष बताओ?

उत्तर : गुरुवंदन करते समय 32 दोष टालने चाहिए। वांदणा के 25 आवश्यक का बराबर ख्याल न रखकर जैसे–तैसे वंदन करना, गुरु के प्रति रोष आदि रखकर मात्र करना पड़े इसलिए करें, अनादर से करें, यह सब दोष हैं।

प्रश्न : दोष रहित गुरुवंदन करने से क्या लाभ होते हैं?

उत्तर : दोष रहित गुरुवंदन करने से छः गुण की प्राप्ति होती है : 1. विनय, 2. अहंकार का नाश, 3. गुरु की पूजा, 4. जिनाज्ञा का पालन, 5. श्रुत धर्म की आराधना, 6. प्रचूर कर्म निर्जरा द्वारा मोक्ष की प्राप्ति होती है।

प्रश्न : गुरु के अभाव में उनकी स्थापना किस प्रकार करनी चाहिए?

उत्तर : स्थापना दो प्रकार की होती है –

1. सद्भुत स्थापना : लकड़ी, पुस्तक, चित्र में गुरु के जैसा आकार कर उसमें गुरु की स्थापना करना।

2. असद्भुत स्थापना : अक्ष (अरिया), वराटक (कोड़ा) तथा ज्ञान–दर्शन–चारित्र के उपकरण वगैरह में गुरु का आकार नहीं होने पर भी उसमें गुरु की स्थापना करना। पुनः यह स्थापना दो प्रकार की है : 1) इत्वर स्थापना : उपरोक्त दोनों स्थापना को मात्र सामायिक आदि काल तक के नवकार, पंचिदिय से स्थापना करना। 2) यावत्कथित स्थापना : उपरोक्त दोनों स्थापना को गुरु के 36 गुणों की प्रतिष्ठा से विधि पूर्वक हमेशा के लिये स्थापना करना।

प्रश्न : गुरु के अभाव में उनकी स्थापना करने की क्या जरूरत हैं?

उत्तर : गुरु के अभाव में उनकी स्थापना करने से गुरु साक्षात् हमें आदेश दे रहे हैं, ऐसे भाव पैदा होते हैं। एवं उनकी निश्रा में करने से धर्मानुष्ठान सार्थक होता है। गुरु के अभाव में किया गया अनुष्ठान फलदायक नहीं बनता। जैसे परमात्मा के अभाव में उनके बिम्ब की स्थापना कर सेवा पूजा का लाभ लेते हैं। वैसे ही गुरु की स्थापना करने पर हम

वंदनादि का लाभ ले सकते हैं।

प्रश्न : गुरू से कितनी दूरी पर रहना चाहिए?

उत्तर : श्रावक एवं साधु को गुरू से $3^1/_2$ हाथ दूर रहना चाहिए।
श्रावक एवं साधु को साध्वीजी से 13 हाथ दूर रहना चाहिए।
श्राविका एवं साध्वीजी को साधु भगवंत से 13 हाथ दूर रहना चाहिए।
श्राविका एवं साध्वीजी को साध्वीजी (गुरूणी) से $3^1/_2$ हाथ दूर रहना चाहिए।

प्रश्न : गुरू की 33 आशातना में से कुछ बताओं?

उत्तर : गुरू के आगे, पास में या पीछे अत्यंत नजदीक खड़ा रहना, बैठना या चलना। गुरू को गोचरी नहीं बताना, उनके बुलाने पर उठकर नहीं जाना। उनके आसन को पैर लगाना, उनकी भूल निकालना, गुरू को या स्थापना (यानि – फोटो आदि) को पैर लगाना, थूंक लगाना, उनकी आज्ञा को भंग करना अथवा स्थापनाचार्य को तोड़ना वगैरह

प्रश्न : गुरूवंदन करते समय हृदय कैसा होना चाहिए?

उत्तर : गुरूवंदन करते समय गुरू के महान् गुणों को नजर में रखते हुए, उनके प्रति हृदय अहोभाव से झुका हुआ होना चाहिए एवं कोई दोष या अहंकार का सेवन न हो जाए उसका पूरा ख्याल रखते हुए 25 आवश्यक का बराबर पालन करते हुए गुरूवंदन करना चाहिए।

प्रश्न : द्वादशावर्त वंदन करने से क्या लाभ होता है?

उत्तर : 84 हजार दानशाला बंधवाने से जितना लाभ होता है, उतना पुण्य गुरू को सामूहिक द्वादशावर्त वंदन करने से होता है।

B. दीक्षा की महत्ता

एक दरिद्र पुत्र ने दीक्षा ली। उसको गांव के लोग चिड़ाने लगे कि पैसा नहीं था, इसलिए दीक्षा ली। उससे सहन नहीं हुआ। उसने गुरु से कहा – यहाँ से विहार करो। तब अभयकुमार ने गुरु को विहार करने से मना किया और लोगों को त्याग का महत्व बताने के लिए गांव में ढंढेरा बजवाया कि यहाँ पर रत्नों के तीन ढेर लगाये गये हैं, जो व्यक्ति अग्नि, स्त्री (पुरुष) एवं कच्चे पानी का त्याग करेगा उसे ये ढेर भेंट दिये जायेंगे। कई लोगों की भीड़ लगी पर कोई एक भी वस्तु का त्याग करके संसार में रहने के लिए तैयार नहीं हुआ। अभयकुमार ने कहा इस बालक ने इन तीनों का त्याग किया है। इसे यह रत्न दिये जाते हैं। लेकिन बालक साधु ने कहा कि मुझे नहीं चाहिए। तब लोगों को दीक्षा का महत्व पता चला कि इसने कितना महान कार्य किया है, तो सब उसे पूजने लगे।

जो त्याग करता है उसे सब पूजते हैं। उन्हें सब सामने से मूल्यवान वस्तु वहोराते हैं। भिखारी के पास भी कुछ भी धन नहीं है। वह भी भीख मांगता है। लेकिन उसको कोई नहीं देता। उसका मूल्य नहीं है, क्यों ? खुद सोचना।

४. दिनचर्या

A. श्रावक जीवन के चौदह नियम

सूचना : आप निम्न बताये अनुसार 14 नियमों की धारणा कम या ज्यादा भी कर सकते है।

1) **सचित** : जिसमें जीव है उसे सचित कहते है (कच्चा पानी, कच्चा नमक, सेब, नांरगी, पपिता आदि फ्रुट्स, काकडी, टमाटर, आदि सब्जी)प्रतिदिन.......(10 से ज्यादा) सचित का उपयोग नही करूँगा।

2) **द्रव्य** : प्रतिदिन --- (30 या 40) से ज्यादा द्रव्य का उपयोग नही करुगां।

3) **विगई** : दूध, दही, घी, तेल, गुड (शक्कर) और तली हुई वस्तु (कडाहविगई) यह छः विगई है। कच्ची और पक्की मिलाकर बारह होती है- प्रतिज्ञा। प्रतिदिन एक विगई कच्ची या पक्की का त्याग करुगां । एक महिने में दो दिन (दो चौदस घी का त्याग)। एक महिने में --- (एक) आंयबिल या एकाशना या बियासना करुंगा।

4) **वाणह** : जुता, चप्पल रोज का एक या दो जोडी।

5) **तंबोल** : सुपारी, धनिया की दाल, सौफं आदि 10 ग्राम से ज्यादा नही।

6) **वस्त्र** : एक दिन में ---(दो)पूरे ड्रेस से ज्यादा नहीं (सामायिक व पूजा का इसमे गिनना नही।)

7) **कुसुम** : फुल का उपयोग (सुंघना) नही करुंगा या 50 ग्राम से ज्यादा नही करुंगा। (जिन पूजा में नियम नही।)

8) **वाहन** : आकाश का – प्लेन, हेलीकॉप्टर का आज के दिन त्याग/पानी का – नैया, जहाज का आज के दिन त्याग/जमीन – बस, ट्रेन, कार, आटोरिक्शा, स्कूटर, साईकल, आदि में पाँच से ज्यादा नहीं।

9) **शयन** : बिस्तर, सोफासेट, कुर्सी आदि 20 से ज्यादा नही वापरुंगा।

10) **विलेपन** : साबुन, तेल, अत्तर आदि 100 ग्राम (या 50 ग्राम) से ज्यादा नही।

11) **ब्रह्मचर्य** : दिन का संपूर्ण पालन। रात्रि में -- दिन पालन करूंगा। शादी के पहले संपूर्ण ब्रह्मचर्य इत्यादि।

12) **दिशा** : आज के दिन में 50 कि.मी. (या 100 कि.मी. से दूर नहीं जाऊंगा)(हमारे)गांव से बाहर नही जाऊंगा।

13) **स्नान** : नदी, तालाब, कुएँ में स्नान नही करुगां। नल के या फव्वारे के नीचे स्नान नहीं करुंगा। दिन में एक बार 1 बाल्टी (10 लीटर) से ज्यादा पानी से स्नान नहीं करुंगा। (जिन पूजा या किसी की मुत्यु पर दो बार स्नान की छूट)।

14) **भत्तेसु** : 10 किलो से ज्यादा आहार पानी नही करुंगा । (आहार – 2 या 3 किलो) (पानी – 7 या 8 लीटर) एवं पृथ्वीकाय, अप्काय (पानी), तेउकाय (अग्नि), वायुकाय, वनस्पतिकाय, और असि, मसि, कृषि के विषय में भी संक्षेप धारणा करना।

9. भोजन – विवेक

A. बाईस (22) अभक्ष्य और बत्तीस (32) अनंतकाय

आहार का सम्बन्ध जितना शरीर के साथ है ठीक उतना ही मन एवम् जीवन के साथ भी है। **जैसा अन्न वैसा मन** और **जैसा मन वैसा ही जीवन**। साथ ही **जैसा जीवन वैसा ही मरण (मृत्यु)**। आहार शुद्धि से विचार शुद्धि और विचार शुद्धि से व्यवहार शुद्धि आती है। दूषित अभक्ष्य आहार ग्रहण करने से मन और विचार दूषित होते हैं, साथ ही संयम की मर्यादा टूट जाती है...खण्ड–खण्ड हो जाती है। शरीर रोगग्रस्त हो जाता है। मन विचारों का गुलाम और तामसी बन जाता है। अत: सात्विक गुणमय जीवन व्यतीत करने के लिए एवम् अनेकविध दोषों से बचने हेतु भक्ष्य–अभक्ष्य आहार के गुण–दोषों का परिशीलन करना आवश्यक है।

अभक्ष्य आहार के दोष : कंदमूल आदि में अनंत जीवों का नाश होता है। मक्खन, मदिरा, मांस, शहद और चलित रस आदि में अनगिनत त्रस जंतुओं का नाश होता है। फलत: उनके भक्षण से मनुष्य अत्यंत क्रूर–कठोर होता है। मन विकारग्रस्त और तामसी बनता है। शरीर रोग का केन्द्र स्थान बन जाता है। क्रोध, काम, उन्माद की अग्नि अनायास ही भभक उठती है। अशाता वेदनीय कर्मों का बंध होता है। नरक गति, तिर्यंच गति, दुर्गतिमय आयुष्य का बंध होता है, मन कलुषित बन जाता है और जीवन अनाचार का धाम। साथ ही अभक्ष्य आहार के कारण उपार्जित पाप जीव को असंख्य–अनंत भवयोनि में भटकाते रहते हैं।

शुद्ध सात्विक भक्ष्य आहार : इसके भक्षण से जीव अनंत जीव एवम् त्रस जंतुओं के नाश से बाल–बाल बच जाता है। शरीर निरोगी, सुन्दर और स्वस्थ बनता है। मन निर्मल...प्रसन्न...सात्विक बनता है। फलस्वरूप जीव कोमल एवम् दयालु बनता है। सद्विचार और सदाचार का विकास होता है। सद्गति सुलभ हो जाती है। त्याग–तपादि संस्कारों का बीजारोपण होता है। जीवन–मरण समाधिमय बन जाता है। उत्तरोत्तर मनशुद्धि के कारण जीवन शुद्धि और उसके कारण शुभ ध्यान के बल पर परमशुद्धि रूप...मोक्ष...अणाहारी पद सुलभ बन जाता है। परिणामत: पुन: पुन: अध:पतन से आत्मा की सुरक्षा...बचाव के लिए बाईस अभक्ष्यों का परित्याग करना परमावश्यक है।

आहार शुद्धि

जीवन जीने के लिए मनुष्य को आहार की आवश्यकता रहती है। अर्थात् जीवन जीने मे उपयोगी तत्त्व आहार है। शरीर टिकने का साधन आहार है।

लेकिन यही आहार जब **आहार संज्ञा** का रूप धारण कर लेता है तब वह आत्मा के लिए भारी नुकसान करता है। इसलिए इस प्रकरण में हम आहार शुद्धि के बारे में विचार करेंगे।

आहार कैसा होना चाहिए। आहार क्या ? आहार संज्ञा क्या ? खाने जैसा क्या है ? नहीं खाने जैसा क्या है ? ये सारे विचार करना ही आहार शुद्धि कहलाती है।

शरीर के लिए उपयोगी और योग्य आहार की ही जरूरत है। **उपयोगी आहार** वह है जो शरीर को नुकसान न करें। **योग्य आहार** वह है जो आत्मा और मन को नुकसान न करे।

विवेकपूर्वक परमात्मा की आज्ञानुसार मात्र शरीर को टिकाने के लिए जो खाते हैं वह **आहार** है। अर्थात् जीने के लिए खाना वह **आहार** है।

आसक्ति एवं राग पूर्वक भक्ष्य-अभक्ष्य के विवेक बिना खाना **आहार संज्ञा** है। अर्थात् खाने के लिए जीना **आहार संज्ञा** है।

आहार से शरीर स्वस्थ और अपने कार्य में समर्थ बनता है। जबकि आहार संज्ञा से शरीर में रोग उत्पन्न होते हैं एवं मन में दोष उत्पन्न होते हैं।

आहार संज्ञा के लोभ में जीव भक्ष्य (खाने योग्य) एवं अभक्ष्य (नहीं खाने योग्य) आहार का भी विचार नहीं करता तथा कर्मबंध कर नरक निगोद में दु:ख भोगता है। इस दु:ख से मुक्त होने के लिए अभक्ष्य आहार को समझकर छोड़ना खूब जरूरी है।

अभक्ष्य के बाईस प्रकार

1 से 5	6 से 9	10	11	12	13	14	15	16	17
पंचुंबरि	**चउविगई**	**हिम**	**विष**	**करगे अ**	**सव्वमट्टीअ**	**राइभोअणगं चिय**	**बहुबीअ**	**अणंत**	**संधाणा**

18	19	20	21	22
घोलवडा	**वायंगण**	**अमुणिअ नामाई पुप्फ फलाई**	**तुच्छ फलं**	**चलिअरसं वज्जे वज्जाणि बावीसं॥**

(1 से 5) उदूंबर-गूलर आदि फल : (1) वट वृक्ष (2) पीपल (3) पिलंखण (4) काला उदूंबर और (5) गूलर इन पाँचों के फल अभक्ष्य हैं। इन में अनगिनत बीज होते हैं। असंख्य सूक्ष्म त्रस जीव भी होते हैं। उन्हें खाने से न तृप्ति मिलती है, न शक्ति। और यदि इन फलों के सूक्ष्म जीव अगर मस्तिष्क में प्रवेश कर जाएँ तो मृत्यु भी हो सकती है। इन जीव-जंतुओं के कारण रोगोत्पत्ति की तो शतप्रतिशत संभावना होती है। अत: इन पाँचों का त्याग करना चाहिए।

(6) शहद : कुंत्ता, मक्खियाँ, भँवरे आदि की लार एवं वमन से शहद तैयार होता है। मधु मक्खी फूलों से रस चूसकर उसका छत्ते में वमन करती है। छत्ते के नीचे धुंआ कर के वहाँ से मधुमक्खियों को उडाया जाता है। तत्पश्चात् इस छत्ते को निचोड़कर शहद निकाला जाता है। निचोड़ने की इस क्रिया में कई अशक्त मधुमक्खियाँ एवं उनके अंडे नष्ट हो जाते हैं और सभी की अशुचि शहद में मिल जाती है। तथा उस में अनेक प्रकार के रसज जीवों की भी उत्पत्ति होती है। इस तरह शहद अनेक जीवों की हिंसा का कारण होने से खाने में उसका त्याग करना ही श्रेयस्कर है। दवाई के प्रयोग में घी, दूध, शक्कर, मुरब्बा आदि से काम चल सकता है, अत: शहद का उपयोग दवा लेने तक में भी न करना हितावह है।

२२ अभक्ष्य

1. वटवृक्ष

2. पीपल

3. पिलंखण

4. गूलर

5. काला उदूंबर

6. शहद (मध)

7. मदिरा

8. माँस

9. मक्खन

(7) शराब (मदिरा) : मदिरा, बीयर, सुरा, द्राक्षासव, ब्रांडी, भांग, वाईन आदि के नाम से पहचानी जाती है। शराब बनाने के लिए गुड़, अंगूर, महुडा आदि को सड़ाया जाता है। उबाला जाता है। इस तरह उस में उत्पन्न अनगिनत त्रस जीवों की हिंसा होती है। तथा शराब तैयार होने के बाद भी उसमें अनेक त्रस जीव उत्पन्न होते हैं और उसी में मरते हैं। शराब पीने के बाद मनुष्य अपनी सुध-बुध भी खो बैठता है। धन की हानि होती है और काम क्रोध की वृद्धि होती है। पागलपन प्रगट होता है। आरोग्य का विनाश होता है। और अविचार, अनाचार, व्यभिचार का प्रादुर्भाव होता है। आयुष्य को धक्का लगता है। विवेक, संयम, ज्ञानादि गुणों का नाश होता है। फलत: जीवन बरबाद होता है। अत: उसका त्याग करना ही श्रेयस्कर है।

(8) मांस : यह पंचेन्द्रिय जीवों की हिंसा से प्राप्त होता है। मांस में अनंतकाय के जीव, त्रस जीव एवं समुच्छिम जीवों की उत्पत्ति होती है। मांस भक्षण से अनेक जीवों की हिंसा होती है। इसके भक्षण से मनुष्य की प्रकृति तामसी बनती है और वह क्रूर बनता है। केन्सर आदि भयंकर रोग भी होने की संभावना रहती है। कोमलता एवं करूणा का नाश होता है। पंचेन्द्रिय जीवों के वध से नरक गति का आयुष्य बंधता है, जिस से नरक में असंख्य वर्षों तक अपार वेदना भोगनी पड़ती है। अनेक धर्मशास्त्र दया और अहिंसा धर्म का विधान करते हैं, उनका उल्लंघन होता है। मांस खाने के त्याग की तरह अंडे खाने का भी त्याग करना चाहिए, क्योंके अंडे में पंचेन्द्रिय जीवों का गर्भ रस रूप में रहता है, अत: उसके खाने से भी मांस जितना दोष लगता है। अंडे में कोलेस्टरोल से हृदय की बीमारी होती है, किडनी के रोग होते हैं, कफ बढ़ता है तथा टी.बी. संग्रहणी आदि रोगों का शिकार बनकर जीवनभर भुगतना पड़ता है। और यह तर्क शुद्ध है कि अंडा निर्जीव नहीं होता, तथा वनस्पति जन्य भी नहीं होता। वह मुर्गी के गर्भ में रक्त व वीर्यरस से बढ़ता है। अत: वह शाकाहार नहीं है। अत: मांस भक्षण में अत्यंत जीवहिंसा जानकर उसका त्याग करना हितावह है।

आजकल जो वेजिटेरियन अंडे के नाम से जो झूठे विज्ञापन (Adve.) देते है वह भी मांसभक्षण ही है। क्योंकि उसमें भी पंचेंद्रिय जीव जन्म ले चुका है। अगर Veg. अंडे है तो मशीन से क्यों नही बना सकते या सब्जी की तरह खेतों में क्यों नहीं उगा सकते ? मुर्गी ही क्यों अंडे देती है। जरा सोचकर सावधान हो जाइए।

(9) मक्खन : (बटर-पोलशन) मक्खन को छाछ में से बाहर निकालने के बाद उस में उसी रंग के त्रस जीव उत्पन्न हो जाते हैं। मक्खन खाने से जीव विकार वासना से उत्तेजित होता है। चारित्र की हानि होती है। बासी मक्खन में हर पल रसज जीवों की उत्पत्ति होती रहती है। इसे खाने से अनेक बीमारियाँ भी हो जाती है। अत: मक्खन खाने का त्याग करना ही श्रेयस्कर है।

इस तरह शहद, मदिरा, मांस और मक्खन ये चारों महा विगई विकार भावों की वर्धक और आत्म गुणों की घातक है। अत: इनका हमेशा के लिए त्याग करना ही चाहिए।

(10) बर्फ (हिम) : छाने अनछाने पानी को जमाकर या फ्रीज में रखकर बर्फ बनाया जाता है। जिस के

10. हिम

11. विष

12. ओला

13. सभी तरह की मिट्टी

15. बहुबीज

14. रात्री भोजन

कण-कण में असंख्य जीव हैं। बर्फ जीवन निर्वाह के लिए भी आवश्यक नहीं है। अत: बर्फ से बननेवाले शर्बत, आइसक्रीम, आइसफ्रुट आदि सभी पदार्थ अभक्ष्य हैं। इसके भक्षण से मंदाग्नि, अजीर्ण आदि रोगों की उत्पत्ति होती है। बर्फ आरोग्य का दुश्मन है। फ्रीज के पेय पदार्थ भी हानिकारक होते हैं। अत: इनका त्याग भी उपयोगी होता है।

(11) जहर (विष) : जहर खनिज, प्राणीज, वनस्पतिज और मिश्र, ऐसे चार प्रकार का होता है। संखिया, बच्छनाग, तालपुट, अफीम, हरताल, धतुरा आदि सभी विषयुक्त रसायन हैं जिन्हें खाने से मनुष्य की तत्काल मृत्यु भी हो सकती है। ये अन्य जीवों का भी नाश करते हैं। भ्रम, दाह, कंठशोष इत्यादि रोगों को उत्पन्न करते हैं। बीड़ी, तम्बाकू, गांजा, चरस, सिगरेट आदि में जो विष है, वह मनुष्य के शरीर में प्रवेश करके अल्सर, केन्सर, टी.बी. रोगों को उत्पन्न करता है। विष स्व और पर का घातक है। अत: त्याज्य है।

(12) ओला : ओले में कोमल और कच्चा जमा हुआ पानी है, जो वर्षाऋतु में गिरता है। उस के खाने का कोई प्रयोजन नहीं है। बर्फ में जितने दोष हैं, उतने ही इस में भी होते हैं, ऐसा जानकर उसका त्याग करना चाहिए।

(13) मिट्टी : मिट्टी के कण कण में असंख्य पृथ्वीकाय के जीव होते हैं। इस के भक्षण से पथरी, पांडुरोग, सेप्टिक, पोइजन जैसी भयंकर बिमारियाँ होती है। किसी मिट्टी में मेंढक उत्पन्न करने की शक्यता होती है। अतः उससे पेट में मेंढक उत्पन्न हो जाएँ तो मरणान्त वेदना सहन करनी पड़ती है।

(14) रात्रि भोजन : यह नरक का प्रथम द्वार है। रात को अनेक सूक्ष्म जंतू उत्पन्न होते हैं। तथा अनेक जीव अपनी खुराक लेने के लिए भी उड़ते हैं। रात को भोजन के समय उन जीवों की हिंसा होती है। विशेष यह है कि यदि रात को भोजन करते समय खाने में आ जाएँ तो जूं से जलोदर, मक्खी से उल्टी, चींटी से बुद्धि मंदता, मकड़ी से कुष्ठ रोग, बिच्छु के काँटे से तालुवेध, छिपकली की लार से गंभीर बीमारी, मच्छर से बुखार, सर्प के जहर से मृत्यु, बाल से स्वरभंग तथा दूसरे जहरीले पदार्थों से जुलाब, वमन आदि बीमारियाँ होती हैं तथा मरण तक हो सकता है। रात्रि भोजन के समय अगर आयुष्य बंधे तो नरक व तिर्यंच गति का आयुष्य बंधता है। आरोग्य की हानि होती है। अजीर्ण होता है। काम वासना जागृत होती है। प्रमाद बढ़ता है। इस तरह इहलोक परलोक के अनेक दोषों को ध्यान में रखकर जीवनभर के लिए रात्रि-भोजन का त्याग लाभदायी है।

(15) बहुबीज : जिन सब्जियों और फलों में दो बीज के बीच अंतर न हो, वे एक दूसरे से सटे हुए हो, गुदा थोड़ा और बीज बहुत हो, खाने योग्य थोड़ा और फेंकने योग्य अधिक हो, जैसे कवठ का फल, खसखस, टिंबरू, पंपोटा आदि। उनको खाने से पित्त-प्रकोप होता है और आरोग्य की हानि होती है।

(16) अनंतकाय-जमीनकंद : जिस के एक शरीर में अनंत शरीर हो, उसे साधारण वनस्पति कहते हैं, जिसकी नसें, सांधे, गांठ, तंतू आदि न दिखते हो, काटने पर समान भाग होते हो, काटकर बोने पर भी

16. अनंतकाय

16. अनंतकाय

16. अनंतकाय

19.बैंगण

20. तुच्छ फल

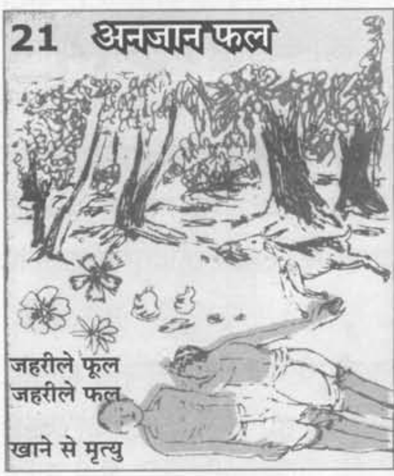

21. अनजान फल

22. चलित रस

२२ त्यागने योग्य अभक्ष्य

पंचुंबरि-चउविगई-हिम-विष-करगेअ-सव्वमट्टीअ, राइ भोअयणगं चिय-बहुबीअ अणंत संधाणा॥
घोलवडा-वयांगण-अमुणिअ नामाईं पुप्फ फलाइ, तुच्छ फलं चलिअ-रसं, वज्जे वज्जाणि बावीसं॥ १॥

पुन: उग जाते हो उसे अनंतकाय कहते हैं। जिसे खाने से अनंत जीवों का नाश होता है। जैसे – आलू, प्याज, लहसून, गीली हल्दी, अदरक, मूला, शकर कंद, गाजर, सूरन कंद, कुँआरपाठा आदि 32 अनंतकाय त्याज्य है। जिन्हें खाने से बुद्धि विकारी, तामसी और जड़ बनती है। धर्म विरुद्ध विचार आते हैं।

(17) आचार : कोई आचार दूसरे दिन तो कोई तीसरे दिन और कोई चौथे दिन अभक्ष्य हो जाता है। आचार में अनेक त्रस जंतु उत्पन्न होते हैं और अनेक मरते हैं।

जिन फलों में खट्टापन हो अथवा जो वैसी वस्तु में मिलाया हुआ हो ऐसे आचार में तीन दिनों के बाद त्रस जीव उत्पन्न हो जाते हैं। परंतु आम, नींबू आदि वस्तुओं के साथ न लिया हुआ गूंदा, ककडी, पपिता, मिर्च आदि का अचार दूसरे दिन अभक्ष्य हो जाता है। जिस आचार में सिकी हुई मेथी डाली गयी हो, वह भी दूसरे दिन अभक्ष्य हो जाता है। मेथी डाला हुआ आचार कच्चे दूध दही या छाछ के साथ नहीं खाना चाहिए। चटनी का भी इसी तरह समझना चाहिए। अच्छी तरह से धूप में न सुखाया हुआ आम, गूंदा और मिर्ची का अचार भी तीन दिनों के बाद अभक्ष्य हो जाता है। अच्छी तरह से धूप में कडक होने के बाद तेल, गुड आदि डालकर बनाया हुआ आचार भी वर्ण, गंध, रस और स्पर्श न बदले तब तक भक्ष्य होता है, बाद में अभक्ष्य हो जाता है। फूलन आने के बाद आचार अभक्ष्य माना गया है। गीले हाथ या गीला चम्मच डालने से आचार में फूलन आ जाने के कारण वह अभक्ष्य हो जाता है। अत: अनेक त्रस जंतुओं की हिंसा से बचने के लिए आचार का त्याग करना लाभदायी है।

(18) द्विदल : जिस में से तेल न निकलता हो, दो समान भाग होते हो और जो पेड के फलस्वरूप न हो ऐसे दो दलवाले पदार्थों को कच्चे दूध, दही या छाछ के साथ मिलाने से तुरन्त बेइन्द्रिय जीवों की उत्पत्ति हो जाती है। जीव हिंसा के साथ आरोग्य भी बिगड़ता है। अत: अभक्ष्य है। जैसे – मूँग, मोठ, उड़द, चना, अरहर, वाल, चँवला, कुलथी, मटर, मेथी, गँवार तथा इनके हरे पत्ते, सब्जी, आटा व दाल और इनकी बनी हुई चीजें, जैसे मेथी का मसाला, आचार, कढी, सेव, गाँठिये, खमण, ढोकला, पापड, बूँदी, बडे व भजिएँ आदि पदार्थों के साथ दही या कच्चा दूध मिश्रित हो जाने पर अभक्ष्य हो जाते हैं। श्रीखंड, दही मठ्ठे के साथ दो दल वाली चीजें नहीं खाना चाहिए। दूध–छाछ, दही को अच्छी तरह से गरम करने के बाद उसके साथ दो दलवाले पदार्थ खाने में कोई दोष नहीं है। भोजन के समय ऐसे खाद्य पदार्थों का विशेष ध्यान रखना जरूरी है। होटल के दही बडे आदि कच्चे दही के बनते हैं अत: वे अभक्ष्य कहलाते हैं। इस तरह उनका त्याग रखना योग्य है।

(19) बैंगन : बैंगन में असंख्य छोटे–छोटे बीज होते हैं। उसके टोप के डंठल में सूक्ष्म त्रस जीव भी होते हैं। बैंगन खाने से तामसभाव जागृत होता है। वासना–उन्माद बढ़ता है। मन ढीठ बनता है। निद्रा व प्रमाद भी बढता है, बुखार व क्षय रोग होने की संभावना रहती है। ईश्वर स्मरण में बाधक बनता है। पुराणों में भी इसके भक्षण का निषेध किया गया है।

(20) अनजाना फल, पुष्प : हम जिसका नाम और गुणदोष नहीं जानते वे पुष्प और फल अभक्ष्य कहलाते हैं, जिनके खाने से अनेक रोग उत्पन्न होते हैं, तथा प्राणनाश भी हो सकता है। अत: अनजानी वस्तुएं नहीं खानी चाहिए। अनजाना फल नहीं खाना इस नियम से वंकचूल बच गया और उसके साथी किंपाक के जहरीले फल खाने से मृत्यु का शिकार बन गये।

(21) तुच्छ फल : जिस में खाने योग्य पदार्थ कम और फेंकने योग्य पदार्थ ज्यादा हो, जिसके खाने से न तृप्ति होती है न शक्ति प्राप्त होती है, ऐसे चणिया बेर, पीलु, गोंदनी, जामुन, सीताफल इत्यादि पदार्थ तुच्छ फल कहलाते हैं। इनके बीज या कूचे फेंकने से उनपर चींटियाँ आदि अनेक जीव जतु आते हैं और जूठे होने के कारण संमुच्छिंम जीव भी उत्पन्न होते हैं। पैरों के नीचे आने से उन जीवों की हिंसा भी होती है। अत: उनके भक्षण का निषेध किया गया है।

(22) चलित रस : जिन पदार्थों का रूप, रस, गंध, स्पर्श बदल गया हो या बिगड़ गया हो, वे चलित रस कहलाते हैं। उन में त्रस जीवों की उत्पत्ति होती है। जैसे – सड़े हुए पदार्थ, बासी पदार्थ, कालातीत पदार्थ, फूलन आई हुई हो ऐसे चलित रस के पदार्थ अभक्ष्य हैं, जिन्हें खाने से आरोग्य की हानी होती है। असमय बीमारी आ सकती है और मृत्यु भी हो सकती है। इस तरह के अभक्ष्य पदार्थों को खाने का त्याग अवश्य ही करना हितावह है।

मिठाई, खाखरे, आटा, चने, दालिया आदि पदार्थों का काल कार्तिक सुदि 15 से फागुन सुदि 14 के दरमियान ठंड में 30 दिनों का। फागुन सुदि 15 से असाढ़ सुदि 14 के दरम्यान ग्रीष्म ऋतु में 20 दिनों का और आषाढ़ सुदि 15 से कार्तिक सुदि 14 के दरमियान 15 दिनों का होता है। तत्पश्चात् ये सब अभक्ष्य माने जाते हैं। आद्रा नक्षत्र के बाद आम, केरी अभक्ष्य हो जाते हैं। फागुन सुदि 15 से कार्तिक सुदि 14 तक आठ महीने खजूर, खारक, बादाम को छोड बाकी के सूखे मेवे, तिल (बिना ओसायें) एवं मेथी आदि भाजी, धनिया पत्ती आदि अभक्ष्य माने जाते हैं।

बासी पदार्थ दूसरे दिन और दही दो रात के बाद अभक्ष्य माना जाता है।

उपरोक्त 22 अभक्ष्य पदार्थों के अतिरिक्त पानी पूरी, भेल, खोंमचों पर मिलनेवाले पदार्थ, बाजारू आटे के पदार्थ, बाजारू मावे से बने पदार्थ, सोडा, लेमन, कोका कोला, ऑरेन्ज जैसे बोतलों में भरे पेय तथा जिन पदार्थों में जिलेटीन आता हो ऐसे सब पदार्थ अभक्ष्य हैं। बोन–पावडर, कस्टर्ड पावडर, केक, चोकलेट, पाऊ–बटर, सेन्डवीच, चीझ, मटन–टेलो से तली हुई वस्तु...वगैरह।

खाने से पहले चिंतन कर लेना चाहिए कि अमुक पदार्थ के खाने से आत्मा एवं शरीर की कोई हानि तो नहीं हो रही है ? हानिकारक पदार्थों को त्यागना शुद्ध और ऊँचे जीवन के लिए अत्यंत हितावह है।

श्री सर्वज्ञ भगवान ने 22 प्रकार के अभक्ष्यों के निषेध का आदेश दिया है। वस्तुत: वह युक्ति युक्त है। जिन दोषों के कारण इन पदार्थों को अभक्ष्य कहा गया है वे निम्नानुसार हैः

1. कन्दमूलादि बहुत से पदार्थों में अनंत जीवों का नाश होता है। मांस मदिरादि पदार्थों में बेईन्द्रिय से

लेकर पंचेन्द्रिय तक के असंख्य त्रस जीवों का नाश होता है। इस प्रकार यह भोजन महा–हिंसा वाला होता है। इसलिए ज्ञानी पुरूषों ने इसे अभक्ष्य माना है।

2. अभक्ष्य पदार्थों के खानपान से आत्मा का स्वभाव कठोर और निष्ठुर बन जाता है।
3. आत्मा के हित पर आघात होता है।
4. आत्मा तामसी बनती है।
5. हिंसक वृत्ति भड़कती है।
6. अनंत जीवों को पीड़ा देने से अशाता वेदनीयादि अशुभ कर्मों का बंध होता है।
7. धर्म विरूद्ध भोजन है।
8. जीवन स्थिरता हेतु अनावश्यक है।
9. शरीर, मन एवं आत्मा के स्वास्थ्य की हानि करता है।
10. जीवन में जड़ता लाता है। धर्म में रूचि उत्पन्न नहीं करता है।
11. दुर्गति की आयु के बंध का निमित्त है।
12. आत्मा के अध्यवसाय को दूषित करता है।
13. काम व क्रोध की वृद्धि करता है।
14. रसगृद्धि के कारण भयंकर रोगों को उत्पन्न करता है।
15. अकाल असमाधिमय मृत्यु होती है।
16. अनंत ज्ञानी के वचन पर विश्वास समाप्त हो जाता है।

निम्न पदार्थ में प्राणीज तत्त्व मिश्र होने से अत्यंत अभक्ष्य हैं :

1. **जिलेटीन** : प्राणियों के हड्डियों का पाउडर है। यह जेली आईस्क्रीम, पीपरमेन्ट, केप्सुल, चुइंग गम आदि बनाने में काम लिया जाता है।
2. **जुजीब्स, एक्स्ट्रा स्ट्रोंग सफेद पीपरमेन्ट, जेली क्रिस्टल** : इन में जिलेटीन है।
3. **सेन्डवीच स्प्रेड मेयोनीज** : इसमें खास अंडे का रस है जो ब्रेड के उपर लगाया जाता है।
4. **ब्रेड–पाउ** : इसमें अभक्ष्य मैदा, ईयल और अनेक कीडों का नाश, खमीरा बनाते त्रस जीवों का अग्नि में संहार, पानी का अंश रह जाने से बासी आटे में करोड़ों जीव बेक्टरीया उत्पन्न हो जाते हैं।
5. **बटर** : मक्खन में असंख्य त्रस जीव जन्तु उसी कलर के होते हैं।
6. **चाइनाग्रास** : समुद्री काई–सेवाल (लील) के मिश्रण से बनाया जाता है।
7. **काफ चीझ** : यह 2–3 दिन के जन्में बछड़ों के जठर को निचोड़कर रस प्राप्त करते हैं। यह ब्रेड के उपर और पीजा बनाने में लिया जाता है।

8. **मेन्टोस** : इसे बनाने में बीफटेलो, बोन (हड्डी पाउडर और जिलेटीन) का उपयोग किया जाता है।

9. **पोलो** : इसमें जिलेटीन एण्ड बीफ ओरिजीन गाय–बैल के मांस का मिश्रण किया जाता है। इसे खाने वालों के स्वभाव में तीखापन, बात–बात में चिडचिडापन आदि मांसाणु के कारण होता है।

10. **नूडल्स** : सेव पैकेट – जिसमें चिकन फ्लेवर (मुर्गी का अंडे का रस) होता है जो नास्ते में खाते हैं।

11. **सुप पाउडर तथा सुप क्युब्ज** : इसमें भी मुर्गी का रस आता है।

12. **पेप्सीन : साबुदाना की वेफरें** : रतालु नाम के जमीनकंद के रस से बनती है। रस के कुंड में असंख्य कीडे आदि जन्तु पैर से रौंद दिये जाते हैं। उस रस के गोल–गोल दानों को साबुदाना कहते हैं। इसमें अनंतकाय और असंख्य त्रस जन्तुओं का कचुमर निकलता है।

13. **टूथ पेस्ट** : सभी में प्रायः अंडे का रस, हड्डी का पाउडर तथा प्राणिज ग्लिसरीन की मिलावट होती है। *इसके स्थान पर अमर मंजन, वज्रदन्ती, काला दन्त मंजन वगैरह उपयोग करें।*

14. **स्नान का साबुन** : प्राणिज चर्बी है जो स्वयं टेलों से बनती हैं।

15. **लिप्स्टीक, आइब्रो, शेम्पू** : इसमें जानवरों की हड्डी का पाउडर, लाल लहू–खून, चर्बी, जानवरों की निचोड़ का रस होता है। इन सब की जांच सुअर, चूहे, बंदर, वगैरह की आँखों में की जाती है। जिससे वे अंधे हो जाते हैं। अतः हे दयावान्। भव्य जीवों, आप उनका उपयोग खाने एवं शरीर के लिए न करें। अभयदान दीजिए।

इन समस्त हेतुओं को दृष्टि में रखते हुए अभक्षता को भली–भाँति समझकर अभक्ष्य पदार्थों का त्याग करना उचित है। अभक्ष्य पदार्थों का और विशेष वर्णन गुरुगम से तथा 'अभक्ष्य अनंत काय विचार', 'आहार शुद्धि प्रकाश' आदि ग्रंथों से जानना चाहिए। जिनाज्ञा विरुद्ध लिखा हो तो मिच्छामि दुक्कडं।

B. होटल त्याग

*एक बार एक महाराज साहेब सुबह 5 बजे विहार कर रहे थे तब एक होटल वाला आदमी चटनी पीसने के लिए पत्थर धोए बिना पीसने लग गया। महाराज साहेब ने पूछा पत्थर क्यों नहीं धोते हो ? उसने कहा इस चटनी के पत्थर को धोकर 6 महीने हो गए हैं। नहीं धोने पर इसमें सड़ा (जीवात) उत्पन्न होता है। और वह जीवात चटनी के साथ पिसने से चटनी में खूब टेस्ट (स्वाद) आता है यदि हम पत्थर धोकर करेंगे तो हमारी और तुम्हारे घर की चटनी में फरक नहीं रहेगा। अर्थात् हमारा धंधा नही चलेगा। लोग हमारी चटनी खाने के लिए ही आते हैं। होटल की चटनी एवं वहाँ की इटली वगैरह के घोल एवं घोल के बर्तन कई दिनों से खुले पड़े रहते है। उसमें मक्खी–मच्छर, कीड़ियाँ वगैरह मसाला के रूप में आ जाते हैं। उससे चटनी में मादकता (एल्कोहॉल) आती है। अतः होटल का कभी नहीं खाना चाहिए।

*एक बार चिंटु अपनी मम्मी-पापा के साथ होटल गया। टमाटर के जूस का ओर्डर दिया। तीन ग्लास जूस आया। चिंटू को सोगन (कसम) थी होटल का खाने की तो भी मम्मी ने मारकर पीने को कहा उसने जैसे ही ग्लास हाथ में लेकर अंगूली से अंदर टमाटर का टुकड़ा लेने गया और हाथ में सीधा टमाटर के स्थान पर मुर्गी के मांस का टुकड़ा हाथ में आया। होटल वाले को बुलाया तब सब मालूम पड़ा कि बहार से वे जैन शुद्ध शाकाहारी बोलते हैं। लेकिन अंदर सब मिश्र होता है। अत: त्याग करना चाहिए।

C. भोजन करते समय उपयोगी सूचना :

1. हाथ धोकर, सभी वस्तु लेकर बैठना।
2. दही-छांस के तपेले ढंककर दाल वगैरह से अलग रखे।
3. कुत्ते-बिल्ली-कौआ एवं भिखारी वगैरह की दृष्टि (नजर) न पड़े वैसे बैठना।
4. खाने के पूर्व साधू भगवंत, साधर्मिक भाई, गाय वगैरह को देकर भोजन करे।
5. खाने की चीजों की अनुमोदना या निंदा नहीं करना।
6. खाते-खाते झूठे मुँह से बोलना नहीं एवं पुस्तक वगैरह को स्पर्श न करे।
7. दोनों हाथ को झूठा न करे एवं झूठा हाथ तपेली या घड़े में न डाले।
8. खुले स्थान में, खड़े-खड़े, टी.वी. देखते-देखते, चलते-चलते, सोते-सोते भोजन नहीं करना।
9. खाते समय एक भी दाना नीचे न गिरे, इसका ध्यान रखे, गिरे तो तुरन्त ही उठा ले। क्योंकि किडी वगैरह आने की संभावना होती है एवं अन्न देवता होने के कारण कचरे डब्बे में भी नहीं डाल सकते।
10. खाने के पूर्व नवकार गिनकर खाये ताकि खाया हुआ कभी अजीर्ण, रोग, पेट दर्द वगैरह रोगों को उत्पन्न न होने दे।
11. कुर्सी पर बैठकर न खाये, अति गरम, अति ठंडा भी न खाये, जूते पहनकर न खाये।
12. भोजन स्वादिष्ट हो या फीका हो तो भी मर्यादित ही करना चाहिए।
13. भोजन के पूर्व जांच कर ले कि परमात्मा की आज्ञा विरूद्ध (अभक्ष्य-अनंतकाय) तो नहीं है।
14. एम.सी. वालों के हाथों का भोजन न करें।
15. क्रोध से, रोते-रोते, अपसेट माइंड से, चिंतातुर होकर न खाये।
16. खाने के बाद तुरन्त पानी नहीं पीना, सोना नहीं, भारी कामकाज (हार्डवर्क) नहीं करना।
17. बार-बार खाना न पड़े इस प्रकार ज्यादा से ज्यादा तीन बार पेट भरकर ही खाये।
18. फास्ट फुड नहीं खाना, थाली धोकर पीना, पोंछकर रखना।
19. कच्चे दही, छास को अलग से द्विदल न हो उसका ध्यान रखकर खाये।
20. भोजन करने के बाद भोजन बच जाये तो तुरन्त ही उसका उपयोग (गाय-गरीब को देकर) करले। वासी न रखे। बर्तन झूठे 48 मिनिट से ज्यादा देर तक न रखें।

10. माता-पिता उपकार

A. माता-पिता, गुरु जनादि के 12 प्रकार के विनय

1. **त्रिकाल वंदन**: माता-पिता, गुरु आदि उपकारी जनों को दिन में तीन बार प्रणाम करना चाहिए। उन्हें प्रणाम करने से विद्युत ऊर्जा का सर्कल परिपूर्ण होता है। सिद्धचक्र महापूजन, सूरि मंत्र आराधनादि, सकलीकरण विधि द्वारा देहशुद्धि, मनशुद्धि व आत्मशुद्धि के अभिनय ही आज के प्राणिक हीलिंग रेकी के सूत्रधार है। नमस्कार की प्रथा यह संस्कृति है, विज्ञान है, आरोग्य है और अध्यात्म है।

2. **खडे रहकर आसनादि देना**: माता-पिता, गुरुजन आदि जब भी आएँ तो खडे होना, उन्हें उचित आसन पर बिठाना यह दूसरा विनय है।

3. **लघुता दर्शन**: माता-पिता, गुरुजनादि के बैठने के बाद हमें उनसे नीचे के आसन पर बैठना चाहिए और बाते करने में नम्रता भाव लाने चाहिए। उन्हें यह कभी न जताएँ कि वे आपसे कम समझदार है।

4. **नामोच्चार, प्रशंसा**: माता-पिता, गुरुजनादि की प्रशंसा सज्जन लोगों के बीच करनी चाहिए और अपवित्र स्थानों पर उनके नाम का उच्चारण नहीं करना चाहिए।

5. **निन्दाश्रवण त्याग**: माता-पिता, गुरुजनादि उपकारी जनों की निंदा नहीं सुननी और ना ही कोई निंदा करता हो तो हाँ में हाँ मिलाना, और ना ही अपनी तरफ से कुछ बातें मिलाकर बात आगे बढाना। निंदा को तुरंत रोकें, और पलटवार करें और तब भी असफल रहें तो वहाँ से उठकर चले जाएँ।

6. **उत्कृष्ट अलंकार, वस्त्रादि अर्पण करना**: माता-पिता, आदि उपकारी जनों को अपने इस्तेमाल से ज्यादा गुणवता वाली वस्तुएँ देनी चाहिए, जिससे उनके प्रति विनय भाव दर्शित हो।

7. **हितकर क्रियाएँ कराएँ** : अपने उपकारी जनों से जीवित अवस्था में पुण्य दानादि के कार्य कराएँ। तीर्थ-यात्रा, अनुकंपादान, प्रवचन श्रवण आदि में भरसक सहायक बनें, जिससे उनकी आत्मा निर्मल बने और विकास शील हो।

8. **अनिच्छनीय प्रवृत्ति का त्याग**: आपके जीवन में कोई आदत, स्वभाव या प्रवृत्ति माता-पिता, गुरु आदि उपकारी जनों को नहीं भाति हो, तो उसे तुरंत त्यागे और उन्हें खुश करें, क्योंकि उनके दिल में तो सिर्फ आपका हित ही बसा है। कोई अच्छी प्रवृत्ति हो और आप न करते हो, तो उनकी इच्छा के अनुरुप आप इस प्रवृत्ति को अवश्य अपनाएँ।

(उपरोक्त आठों विनय माता–पिता, गुरु आदि उपकारी जनों के जीवित अवस्था के दौरान ही करने चाहिए। बाकी के चार विनय उनकी अनुपस्थिति में करने चाहिए।)

9. **उनके आसनादि का उपयोग न करना**: उनके जीवन के दौरान उपयोग में आयी हुए सभी चीजे दान करनी चाहिए। उन्हें अपने जीवन में उपयोग में लाने से उनका अविनय होता है।

10. **वारसागत संपत्ति का उपयोग तीर्थादि में करना**: अपने व्यक्तिगत पुण्य से माता–पिता द्वारा अर्जित संपत्ति उनकी मृत्यु के बाद तीर्थों के निर्माण/विकास आदि में उपयोग में लानी चाहिए। उनकी संपत्ति का उपयोग संतान द्वारा अपने लिए कतई नहीं करना चाहिए।

11. **माता-पिता की प्रतिकृति को नमस्कार**: माता–पिता की अनुपस्थिति में उनकी फोटो अथवा उनकी मूर्ति बनवाकर घर में रखें और हर रोज उनके उपकारों को याद कर उन्हें प्रणाम करें। माता–पिता द्वारा भराई हुई प्रतिमा की उनकें मरणोपरांत पूजा करते–करते उन्हें याद करना चाहिए।

12. **मरणोपरांत की क्रियाएँ करावें**: माता–पिता की मृत्यु के पश्चात् शास्त्रों में दर्शायी गयी 16 संस्कारों की क्रिया का अंतिम संस्कार **अग्नि संस्कार** विधिवत् करना चाहिए। तत्पश्चात् उनके आत्म श्रेयार्थ परमात्म भक्ति महोत्सव, जीवदया, अनुकंपा, साधर्मिक भक्ति के कार्य करके उन्हें याद करना चाहिए।

इस प्रकार उपरोक्त बारह प्रकार से माता–पिता, धर्माचार्य, विद्यादाता आदि का विनय करना, भक्ति एवं पूजा करनी चाहिए।

11. जीवदया-जयणा

A. जीव विज्ञान

जो अपने समान सुख-दुःख को महसूस करे, वे जीव हैं। जैन शास्त्र में जीव के 563 भेद बताए हैं।

नरक के	–	14 भेद
तिर्यंच के	–	48 भेद
मनुष्य के	–	303 भेद
देव के	–	198 भेद
कुल	–	563 भेद

पाँच इन्द्रिय से भी जीव को पहचान सकते हैं :

एक इन्द्रिय वाले – एकेन्द्रिय जीव – जैसे कि...पृथ्वी, पानी, अग्नि, हवा, वनस्पति।

दो इन्द्रिय वाले – बेइन्द्रिय जीव जैसे कि...लट, शंख, कृमि, पानी के पोरे।

तीन इन्द्रिय वाले – तेइन्द्रिय जीव जैसे कि...जूं, चींटी, मकोड़े, उधेहि...।

चार इन्द्रिय वाले – चउरिन्द्रिय जीव जैसे कि...मच्छर, मक्खी, भमरा, बिच्छू।

पाँच इन्द्रिय वाले – पंचेन्द्रिय जीव जैसे कि...देव, नारकी, मनुष्य, तिर्यंच।

ऊपर बताए गये सभी जीव अपने समान हैं, लेकिन कर्मों के कारण इनकी अलग-अलग अवस्था है। हमें इन जीवों को बचाना चाहिए।

<u>जीवों की जयणा = जीवों को बचाने के उपाय</u>

1. एकेन्द्रिय

(1) पृथ्वीकाय के जीव : एक आँवले जितने पृथ्वीकाय के जीव यदि कबूतर का रूप धारण करे तो 1 लाख योजन के जंबूद्वीप में भी नहीं समा पाएंगे। रात्रि के समय जो धूल बाहर से उड़कर अपने घर में आती है, वह सचित्त मिट्टी होती है, इसे वासी काजा कहते हैं। सुबह उठकर इन जीवों की रक्षा के लिए वासी झाड़ू निकालने के बाद ही घर में घूम सकते हैं। रास्ते में मिट्टी तुरंत खोदी हुई हो तो उस पर नहीं चलना चाहिए।

उदा : सब जाति की मिट्टी, धातु, रत्न, नमक, पत्थर आदि।

(2) अपकाय (पानी के जीव) : पानी की एक बूंद के जीव यदि सरसों के दाने जितना अपना शरीर बनाए तो पूरे जंबूद्वीप में नहीं समा पायेंगे एवं एक बूंद में 36,450 चलते-फिरते जीव भी वैज्ञानिकों ने सिद्ध किए हैं। साबुन लगाने से पानी के जीवों को आँख में मिर्ची डालने से भी कई गुना अधिक वेदना होती है। एक घड़ा अलगण पानी उपयोग करने पर 7 गाँव को जलाने जितना पाप लगता है।

<u>जयणा</u> : 1. स्नान में आधी बाल्टी पानी का ही उपयोग करें।
2. गीजर के पानी का उपयोग न करें।
3. पानी के जीवों की जयणा बराबर करें।
4. पानी छानकर उपयोग में ले।

(3) **तेउकाय** : एक चावल के दाने जितने अग्नि के जीव यदि अपना शरीर खसखस के दानें जितना बना दें तो इस जंबूद्वीप में नहीं समा पाएंगे। यह दश दिशाओं का शस्त्र हैं। सब जीवों का नाश करता है। सर्व प्रकार की इलेक्ट्रिसिटी एवं अग्नि में यह जीव हैं।

<u>सावधानी</u> : स्वीच एवं गैस का उपयोग जितना हो उतना कम करें। इलेक्ट्रिक साधनों की अनुमोदना नहीं करना। जैसे लाइटर, स्वीच, टी.वी. आदि।

(4) **वाउकाय :** एक नीम के पत्ते जितनी हवा में रहे हुए वाउकाय के जीव यदि अपना शरीर लीख जितना बना दे तो जंबूद्वीप में नहीं समा पाएंगे।

<u>नियम</u> : पंखा बारबार चालू नहीं करें, सूखे हुए कपड़े तुरंत लें, झूला न झूलें।

(5) **वनस्पतिकाय :** दो प्रकार : प्रत्येक एवं साधारण वनस्पति। जिसमें एक शरीर में एक जीव है, वह प्रत्येक एवं एक शरीर में अनंत जीव है वह साधारण। जैसे भिंडी, सेब आदि प्रत्येक वनस्पति है। आलु, गाजर आदि साधारण वनस्पति है।

<u>नियम</u> : हरी वनस्पति पर नहीं चलना, पेड़ को नहीं छूना, तिथि के दिन लीलोत्तरी का त्याग करना।

2. **बेइन्द्रिय :** 22 प्रकार के अभक्ष्य में ये जीव असंख्य होते हैं – द्विदल, ब्रेड आदि अभक्ष्य का त्याग करने पर इन जीवों को अभयदान मिलता है।

3. **तेइन्द्रिय :** धनेड़ा, जू आदि। धान्य में धनेड़ा आदि एवं माथे में जूं आदि की उत्पत्ति न हो उसका पहले से ही उपयोग रखें एवं हो जाये तो सावधानी से उसकी जयणा करें। सड़ा धान्य धूप में न रखें।

<u>पहचान</u> : लगभग 4 अथवा 6 पैर वाले होते हैं।

4. **चउरिन्द्रिय :** मच्छर, भमरी आदि। मच्छर के लिए दवाई का उपयोग न करें।

<u>पहचान</u> – लगभग 6 या 8 पैर होते हैं। मूँछ होती है और छोटे पंख होते हैं। बेइ., तेइ., चउ., इन तीनों को विकलेन्द्रिय भी कहते हैं। यहाँ तक के सब जीव संमुच्छिम होते हैं।

5-1. **पंचेन्द्रिय तिर्यंच :** ये समुच्छिम एवं गर्भज दो प्रकार के होते हैं।

गर्भज पंचेन्द्रिय तिर्यंच : गाय, बैल, साँप, नोलिया, कबूतर, चिड़िया, मछली, मगरमच्छ ये गर्भ से उत्पन्न होते हैं इसलिए गर्भज कहलाते हैं।

संमुच्छिम पंचेन्द्रिय तिर्यंच : ये जीव गर्भज तिर्यंच जैसे ही दिखते हैं। अमुक प्रकार के चूर्ण आदि के मिश्रण से भी इन्हें उत्पन्न किये जा सकते हैं।

<u>नियम</u> : शेम्पु, लिपस्टिक, चमड़े के बेल्ट आदि प्राणीज वस्तुओं का उपयोग नहीं करना।

5-2. पंचेन्द्रिय मनुष्य : ये भी समुच्छिर्म एवं गर्भज दो प्रकार के होते हैं।

संमुच्छिर्म मनुष्य : इनका शरीर छोटा होने के कारण एक साथ असंख्य इकट्ठे होने पर भी नहीं दिखते हैं। ये जीव झूठे खाने में, मूत्र आदि मनुष्य के 14 अशुचि स्थानों में उत्पन्न होते हैं। इसलिए झूठा नहीं छोड़ना, थाली धोकर पीना, ग्लास पोंछकर रखना।

नियम : किसी का मन नहीं दुखाना, बच्चों को नहीं मारना।

12. विनय-विवेक

दान की महिमा

हिंदुस्तान की धरती दान से विभुषित है। उसमें भी विशेषकर जैनों में हरेक प्रसंग में दान की मुख्यता होती है। चार प्रकार के धर्म में प्रथम धर्म भी दान है, परंतु ये दान दूषित न हो इसके लिए ये पांच दोष का त्याग करना चाहिए।

A. दान के पांच दूषण

1. अनादर 2. विलंब 3. तिरस्कार 4. अभिमान 5. पश्चाताप

1. अनादर :

दान करने का मन में कोई भाव ही नही, मात्र भिखारी के क्षेत्र में नहीं परंतु सर्वत्र दान का अभाव। कोई संस्थावालें आते है तो यह विचारें कि ये कहाँ से आये ? पैसा नहीं होता तो ये पीछे पड़ते ही नहीं ? मन में घृणा का भाव ये दान का दूषण है। दान करने पर भी आदर का भाव बिल्कुल नहीं होता। आज बाजु वाले कहते है इसलिए मुझे लिखाना पड़ा। देता जरुर है, पर अनादर पूर्वक। ये दान का प्रथम दूषण है।

2. विलंब:

विलंब दान का दूसरा दूषण है। दान देता है, पर थोड़ी देर लगाकर। सामने वाले से 4 से 5 बार विनंती कराकर फिर देना। देना तो है परंतु सामने वाले को झुकाकर फिर देना, गुरु भगवंत बोरड़ी गाम में चातुर्मास थे, शिविरार्थी में से एक लड़के ने कहा, - साहेब... कमाल हो गई, मैने पूछा - क्या हुआ ? लडके ने कहा - उपाश्रय के बाजु में एक मुसलमान की बाल काटने की दूकान थी, वहाँ में बाल कटवाने गया। वहाँ एक भिखारी भीख माँगने आया। मेरे बाल काटते-काटते बीच में गल्ले में से पचास पैसे का सिक्का निकालकर भिखारी को दिया। भिखारी चला गया, फिर मैने मुस्लिम भाई से पूछा, चालु बाल काटते काटते भिखारी को दान क्यो दिया? तब उस मुस्लिम ने जो जवाब दिया वो सोचने लायक है, उसने कहा यहाँ आये हुए आचार्य भगवंत के प्रवचन में सुना था दान करते हुए विलंब नहीं करना । इसलिए मैने भिखारी को समयसर पैसे दे दिये। तुम्हारें बाल काटने के बाद देता तो शायद वो मजबुरी के कारण खड़ा जरुर रहता, लेकिन मुझे लगा कि तुमको शायद फर्क नहीं पड़ेगा। इसलिए मैंने उसको बाल काटने के बीच

एकेन्द्रिय जीवों का स्वरुप

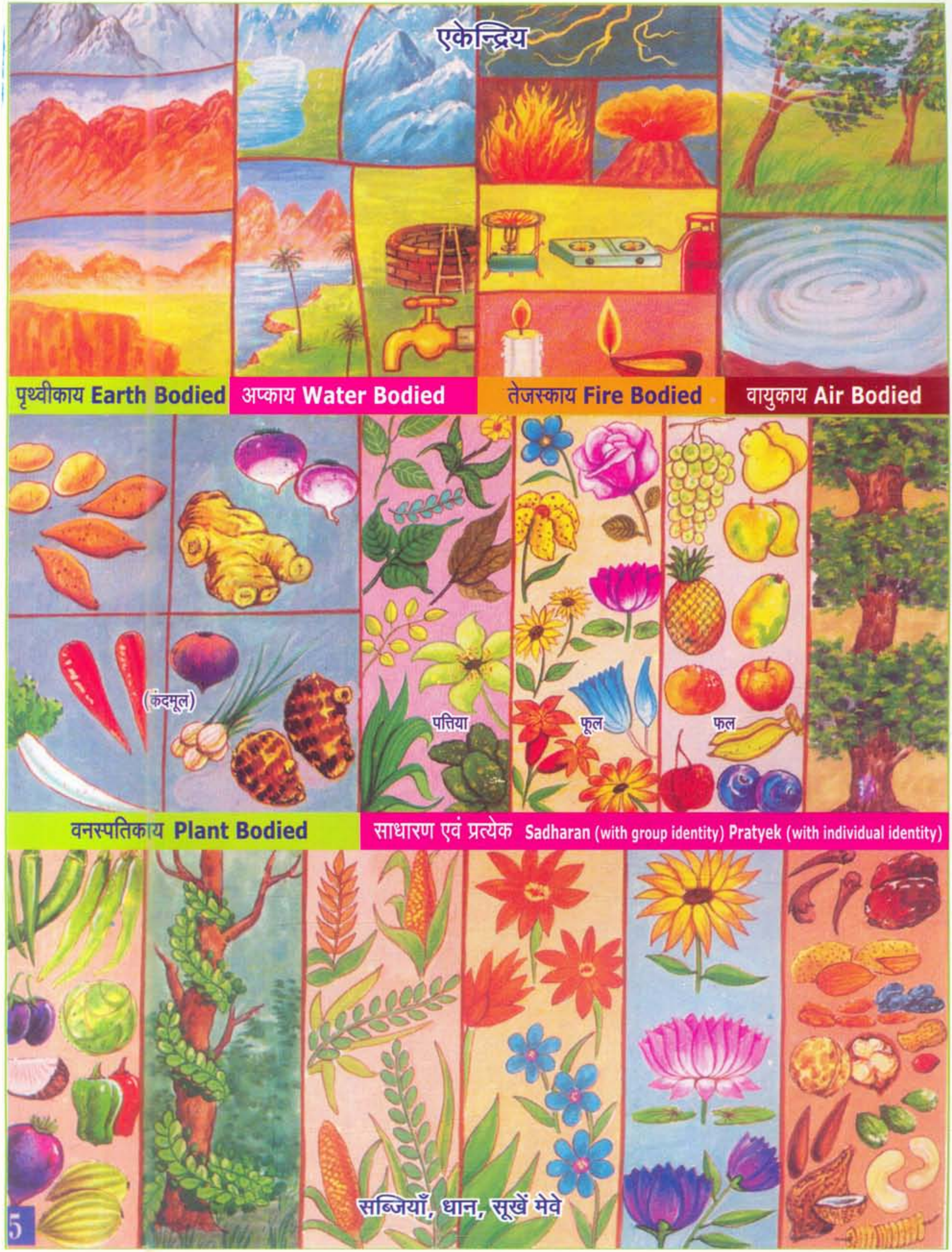

पंचेन्द्रिय जीवों तथा चार गति का स्वरुप

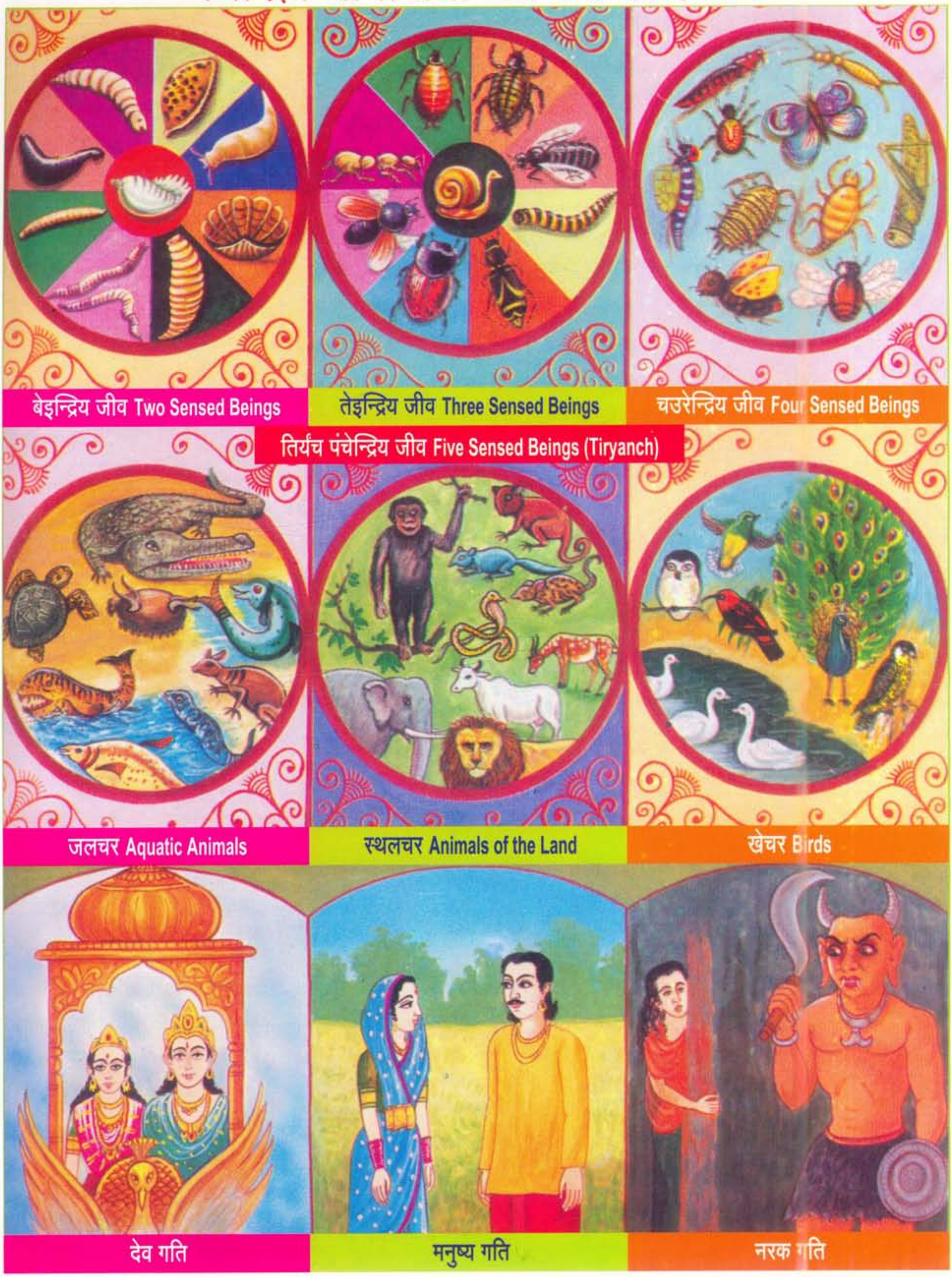

दर्शन के उपकरण

कलश
चांदी की थाली - वाटकी
कंकावटी
जलवृष्टि
वालाकुंची
सुवर्ण का कलश
चंदन (सुखड)
मोरपींछी
धूपदानी
केशर थाली
फूलदानी
दर्पण
पंखा
दीपक
दीवो
धूप
दीपक
चामर
अक्षत
नैवेद्य
आरती
मंगल दीवो
फल

चारित्र के उपकरण

चरवली (पात्रा पूंजने के लिए), टोकसी (कटोरी), टोकसो = पवालो = Glass

ज्ञान के उपकरण

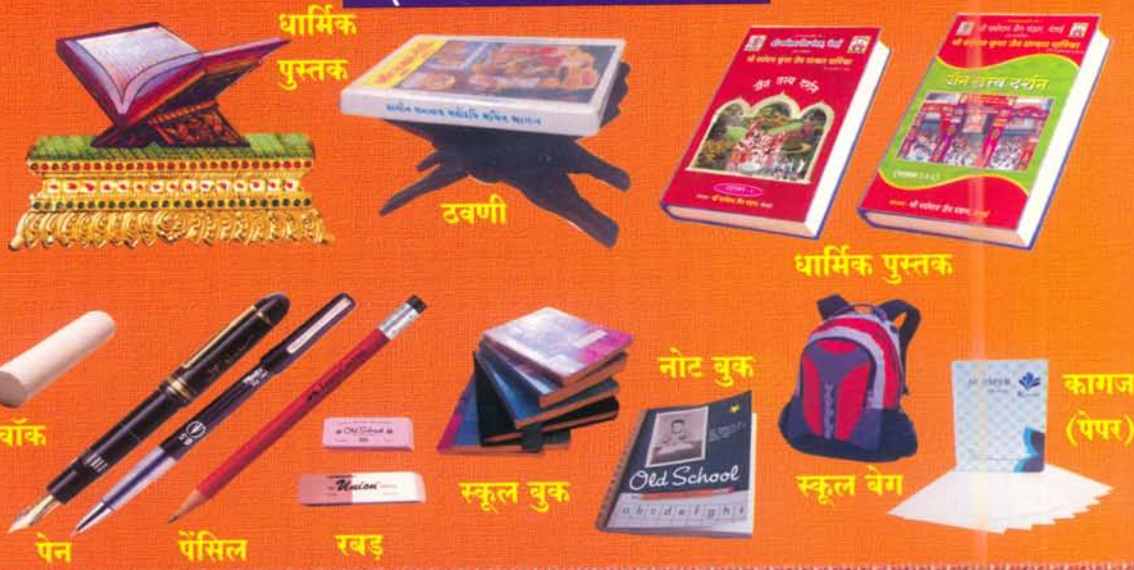

में ही पैसे दे दिये। उदाहरण के तौर पर घोडागाडी या रिक्शे में से उतरते ही उसी समय तुम्हारा कोई मित्र तुमसे मिलने आये, तब तुम पहले उसके पैसे चुका देते हो या अपने मित्र से बातचीत में लग जाते हो ? अगर बात करने लग जाये तो वह विलंब है। संघ में, मंदिर में या उपाश्रय में जो भी बोली बोलते हो, फिर तुरंत हीं भर देते हो या एक वर्ष लगाते हो ? भगवान ने तीन प्रकार की बात की है... करण, करावन और अनुमोदन। तुम्हारी ताकत प्रमाण बोली बोलो। ताकत से ज्यादा बोलने की बिल्कुल जरुरत नहीं। बोली आगे बढ जाये तो बैठे बैठे अनुमोदना करो, यह भी धर्म है। इसका अर्थ यह नहीं समझना कि शक्ति होते हुए भी बोलियाँ नहीं बोलना। बोली बोलने के बाद 24 घंटे से अधिक देर से रकम भरे तो ये भी विलंब है। उससे दान दूषित बन जाता है।

3. तिरस्कार :

तीसरे नंबर का दोष है तिरस्कार... अप्रिय वचन। कोई माँगने आयें तो दान तो जरुर करते है लेकिन कहते है चल चल, आगे चल। इससे दान दुषित होता है। अनादर मन में होता है, तिरस्कार भाव वचन के द्वारा प्रगट होता है। सबके बीच में तु माँगने क्यों आया? शर्म के कारण मुझें देना पडा? भिखारी के क्षेत्र में तिरस्कार बहुत होता है। दान करने के बाद बोलकर बिगाडना, इससे दान दूषित होता है।

4. अभिमान :

चौथे नंबर का दोष है अभिमान... मैं हूँ तो तुम्हारी संस्था चलती है। खुद के द्वारा किया हुआ दान को सबके आगे प्रगट करते रहना और अपने अभिमान का पोषण करते रहना। तुम बैंक में पैसे लेने गये, केशीयर ने तुमको पैसे दिये इसमें केशीयर को अभिमान करने का राईट है क्या ? इसी तरह तुम तो भगवान के केशीयर हो। दान करने के बाद अभिमान करने का राइट नही है। प्रभु का प्रभु को अर्पण किया इसमे अभिमान क्यों करना ?

5. पश्चाताप :

पांचमें नंबर का दोष है पश्चाताप... दान करने के बाद पश्चाताप नही करना, दान दुषित बन जाता है। एक भाई महाराज साहब को मिलने आये और कहा – साहिब हस्पताल में 11 लाख का डोनेशन किया है। महाराज साहेब ने उस भाई को समझाया, हस्पताल में दान दिया उसका मैं विरोध नहीं करता परंतु 11 लाख की सही वस्तु लेकर देनी थी। श्रावक पुछता है, साहेब समझा नहीं? साहेबजी बोले – हस्पताल में तुमने 11 लाख लिखाया, वहाँ तो गर्भपात के भी आपरेशन होते है। पंचेन्द्रिय जीवों की हत्या का पाप लगेगा। श्रावक खुश हो गया। साहेब, कमाल की बात बता दी। यह है विवेक की हाजरी। तुम्हारे दो रुपये देने से भीखारी सीगरेट अथवा तंबाकु खाता हो तो मौसंबी अथवा केला वगैरह खाने को देना। पर दान देने का बंद नहीं करना। दान देने के पूर्व विवेक रखना एवं दान देने के बाद पश्चाताप नहीं करना।

B. दान के पांच भूषण

1. आनंद अश्रु :

आनंद में आँसु आ जाये, मेरे जैसे को यह अद्भुत लाभ मिल गया। लेने वाला उपकारी लगेगा तो ही आनंद अश्रु आयेंगे। रेवती, चंदनबाला श्राविका देखी... क्या थे ? संगम शालीभद्र बना। कैसे? आनंद के अश्रु से। मुनिभगवंत को गोचरी वहोरावते कितना आनंद आता है ये तुम्हारी अनुभूति का विषय है। महाराज साहेब बारबार लाभ देना। ऐसा बार–बार कहते हुये आनंद के आंसु भी आ जाते है।

2. अत्यधिक रोमांचित :

शरीर में रोंमाच खडा हो जायें, बहुत से श्रावक कहते है साहेब देखो शरीर के रोम -रोम खडे हो गये। वैसा ही, कुछ भी दान देते वक्त अपना रोम–रोम खडा होना चाहिए।

3. बहुमान भाव:

सामान्य भाव नहीं अपितु बहुत ज्यादा आदर सत्कार पूर्वक दान देना। मन में अहोभाव पूर्वक थोड़ा झुककर दान देना चाहिए।

4. प्रियवचन:

मधुर वचन पूर्वक दान करना। ये धरती तो रत्नविभूषित है। ये दान का मौका मुझे दिया, मैं आज धन्य बन गया। यह बात खास ध्यान रखने जैसी है। 'फलवाले पेड के पास, जो लोग फल लेने को जाते है', 'भरी हुई नदी के पास जो लोग पानी पीने के लिए जाते है', तो पेड या नदी कभी ऐसा नहीं विचार करते है कि लोग मेरे पास ही क्यो माँगते है ? तो क्या भीखारी के पास कोई माँगनी कर सकते है क्या? अतः दान देनेवाले को बहुत ही मधुर वचन से बुलाना।

5. अनुमोदना:

दान करने के बाद मन ही मन में आनंद का भाव होना चाहिये। संगम ने साधु भगवंत को खीर वहोराने के बाद कितना आनंद का भाव भाया था ? कैसे महात्मा ? कैसा दान ? आगे के भव में शालीभद्र बन गये।

पाँच दुषणों से दूर रहना.. पांच भूषण को अपना लेना, सफल बन जाओगे।

13. सम्यग् ज्ञान

A. (अ) आठ कर्म के नाम, भेद एवं चित्र

	कर्म के नाम	भेद	किसके जैसा	बंध का कारण
1.	ज्ञानावरणीय	5	आँख पर पट्टी	ज्ञान,ज्ञानी की आशातना करने पर ।
2.	दर्शनावरणीय	9	द्वारपाल	दर्शन के उपकरण की आशातना से।
3.	वेदनीय	2	मधु लिप्त तलवार	जीवों को दुःख देने से।
4.	मोहनीय	28	मदिरा	आरंभ-समारंभ एवं उन्मार्ग देशना, साधु की निंदा, राग- द्वेष से।
5.	आयुष्य	4	बेडी(सांकल)	आरंभ-समारंभ एवं कषाय करने पर।
6.	नाम	103	चित्रकार	शुभ-अशुभ कार्य करने पर।
7.	गोत्र	2	कुम्हार	पर-निंदा,स्व-प्रशंसा करने पर।
8.	अंतराय	5	भंडारी	दान,शीलादि में अंतराय करने पर।

1. प्रश्न कर्म किसको कहते हैं ?

उत्तर आत्मा के साथ कार्मण वर्गणा का एकमेक होना कर्म है।

2. प्रश्न जड़ कर्मों का आत्मा पर कैसे प्रभाव पड़ता है ?

उत्तर जिस प्रकार ब्राह्मी औषधि के सेवन से बुद्धि विकसित होती है और मदिरापान से बुद्धि विकृत होती है। ठीक उसी प्रकार आत्मा पर कर्म का प्रभाव पड़ता है।

3. प्रश्न बंध किसे कहते हैं ?

उत्तर आत्मा के साथ कर्म का जुड़ना। जैसे दूध-पानी के साथ एक हो जाता है वैसे ही आत्मा के साथ कर्म का बंध होता है।

4.प्रश्न कर्म बंध के मुख्य कारण कितने हैं और कौन-कौन से ?

उत्तर कर्म बंध के मुख्य कारण चार हैं। मिथ्यात्व, अविरति, कषाय और योग।

5. प्रश्न कर्म कितने प्रकार के हैं और कौन-कौन से ?

उत्तर कर्म आठ प्रकार के हैं। ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, आयुष्य, नामकर्म, गोत्रकर्म, अंतराय कर्म। इन आठों कर्मों को दृष्टांत के द्वारा समझ सकते हैं। **ज्ञानचंद** सेठ **दर्शन** करने गए, मार्ग में उनके पेट में **वेदना** होने लगी। सामने उनके मित्र **मोहनजी** वैद्यराज मिले, उन्होंने कहा जल्दी इलाज करवाओ नहीं तो **आयुष्य** पूर्ण हो जाएगा, मैं दवाई लाऊँ तब तक भगवान का **नाम** लो और **गौत्र** देवता को याद करो आपका **अंतराय** कर्म दूर हो जाएगा।

6. प्रश्न किस कर्म के उदय से जीव सत्य स्वरूप को नहीं जान सकता है ?

उत्तर मिथ्यात्व मोहनीय कर्म के उदय से।

1. ज्ञानावरणीय कर्म

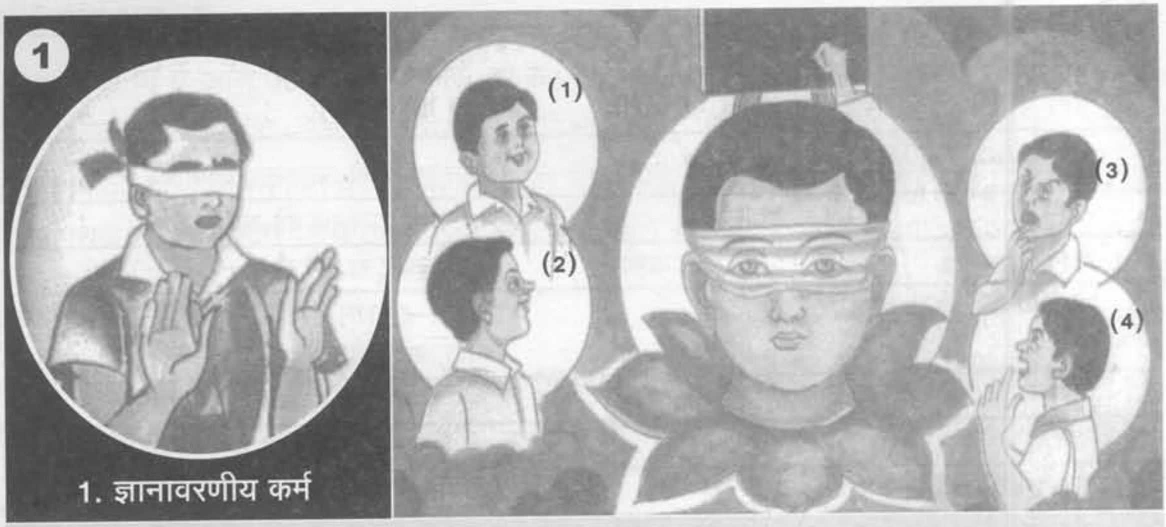

यह कर्म जीव को (1) बुद्धिमान, (2) चतुर, (3) मूर्ख, (4) मंदबुद्धि इत्यादि बनाता है।

यह कर्म आत्मा के अनंतज्ञान गुण को रोकता है।

इस कर्म के उदय से जीव को बुद्धि की न्यूनता प्राप्त होती है। वस्तु का विशेष बोध नहीं होता...पागलपन आता है। यह कर्म आँख पर बंधी पट्टी के समान है। जिस तरह पट्टी बंधा हुआ मानव देख नहीं सकता उसी तरह इस कर्म के आवरण से जीव को ज्ञान प्राप्त करने में रुकावट होता है।

प्रश्न.1 ज्ञानावरणीय कर्म बंध के कौन से कारण हैं ?

उत्तर ज्ञान, ज्ञानी एवं ज्ञान के उपकरणों (साधन) की आशातना करना। पढ़ते हुए को अंतराय करना। पेपर (अखबार) कागज आदि में खाना, ऊपर बैठना, पैर–थूंक लगाना, पेशाब करना, उसमें बच्चों को टट्टी कराना, टट्टी साफ करना, जलाना, लिखे हुए अक्षरों को थूंक से मिटाना। अक्षर वाले कपड़े, बूट–जूते पहनना। ज्ञानी व्यक्ति की ईर्ष्या करना, सताना, अनादर, अपमान करना, पढ़ाने वाले गुरु को छिपाना, हैरान करना, धाक धमकी देना, पेन पेन्सिल मुँह में डालना वगैरह।

प्रश्न.2 ज्ञानावरणीय कर्म का फल क्या ?

उत्तर अत्यंत अज्ञानता प्राप्त होती है। मंद बुद्धि होती है। बार–बार याद करने पर भी शीघ्र भूल जाता है। बहरा–गूंगा–अंधा–तोतला व पंगु होता है। बाल्यकाल में माता–पिता का वियोग होता है। लोकों में तिरस्कृत होते हैं।

2. दर्शनावरणीय कर्म :

यह कर्म (1) चमडी, (2) जीभ, (3) नाक, (4) आँख, (5) कान इन पाचों इन्द्रिय की शक्ति को कमजोर बनाता है।

जो कर्म आत्मा के अनंतदर्शन गुण को रोकता है वह दर्शनावरणीय कर्म कहलाता है।

इस कर्म के उदय से जीव को वस्तु का सामान्य बोध नहीं होता है। नींद बहुत आती है। इन्द्रीय की न्यूनता प्राप्त होती है। यह कर्म द्वारपाल के जैसा है। जिस तरह द्वारपाल से रोका गया मनुष्य राजा का दर्शन नहीं कर सकता, उसी तरह इस कर्म के उदय वाला जीव, वस्तु का सामान्य ज्ञान भी नही पा सकता।

प्रश्न.1 दर्शनावरणीय कर्मबंध के कारण कौन से हैं ?

उत्तर जिनमंदिर के उपकरणों की आशातना करने से। देव-गुरु-धर्म की निंदा करना। गुरु म.सा. का अनादर करना। नवकारवाली, मूर्ति व स्थापनाचार्य आदि तोड़ना, पैर लगाना, झूठे मुँह से हाथ लगाना। मंदिर में बात करना आदि 84 जिनमंदिर की आशातनाओं का त्याग न करना। देव, गुरु और धर्म के प्रति श्रद्धावान आत्मा की निंदा-तिरस्कार करना।

प्रश्न.2 दर्शनावरणीय कर्मबंध का फल क्या है ?

उत्तर जन्म से अंधापन आता है। नेत्र ज्योति कम होना, आँखों की बीमारियाँ होती है। अंगोपांग की विकलता। अधिक नींद आना, थीनद्धि निद्रा के उदय से हिंसा करके नरक आदि दुर्गति प्राप्त होती है।

3. वेदनीय कर्म :

यह कर्म जीव को सुख एवं दुःख प्रदान करता हैं।

यह कर्म आत्मा के अव्याबाध सुख के गुणों का नाश करता है।

इस कर्म के उदय से जीवन को सुख-दुःख दोनों का अनुभव होता है। यह कर्म मध से लिपटी हुई तलवार के जैसा है। जिस तरह तलवार के ऊपर के मध का रस चाटते सुख होता है और तलवार की धार से जीभ कट जाये तो दुःख होता है। उसी तरह शाता वेदनीय से सुख होता है और अशाता वेदनीय से दुःख का अनुभव होता है।

प्रश्न.1 शातावेदनीय कर्मबंध के कारण कौन से हैं ?

उत्तर गुरु की भक्ति करना, क्षमा धारण करना, प्राणियों पर अनुकंपा, दया रखना, औषध पथ्यादि से रोगी की सेवा सुश्रुषा करना, कषायों पर विजय करना, धर्म में दृढ़ श्रद्धा रखना। व्रतियों पर अनुकंपा (भक्ति) करना, लोभवृति का शमन करना आदि।

प्रश्न.2 अशातावेदनीय कर्मबंध के कारण कौन से हैं ?

उत्तर दुःख शोक, आक्रंदन, विलाप करना और दूसरों को कराना, व्रतों का यथार्थ पालन नहीं करना, चीजों में मिलावट करना, गलत माप-तौल रखना, दूसरों की निंदा करना और स्वयं की प्रशंसा करना, ठगाई करना गुरु भक्ति नहीं करना और जीवों की दया न करना।

4. मोहनीय कर्म :

4. मोहनीय कर्म

यह कर्म जीव को रूलाता, क्रोधित कराता, डराता, हंसाता हैं।

यह कर्म आत्मा के क्षायीक समकीत गुण को रोकता है। यह कर्म सर्व कर्मों का राजा है। इस कर्म के उदय से जी घबराता है, विवेक से भ्रष्ट होता है। आसक्ति और राग के परिणाम वाला होता है। हास्य–शोक–भय–विरह (रोना) वगैरह का अनुभव होता है।

यह कर्म मदिरापान करने जैसा है। जिस तरह मदिरापान किया हुआ मानव विवेक भ्रष्ट बनता है उसी तरह मोहनीय कर्म के उदयवाला जीव सार–असार, योग्य–अयोग्य का विवेक भूल जाता है।

धर्म का सच्चा मार्ग छोड़ उल्टा मार्ग दिखानेवाला, देवद्रव्य की चोरी करनेवाला, भगवान साधु वगैरह का विरोध करनेवाला मोहनीय कर्म बंधन करता है।

प्रश्न.1 मोहनीय कर्म के मुख्य कौन से प्रकार हैं ?

उत्तर दो प्रकार हैं – 1. दर्शन मोहनीय कर्म और 2. चारित्र मोहनीय

प्रश्न.2 दर्शन मोहनीय कर्मबंध के फल कौन से हैं ?

उत्तर परमात्मा एवं परमात्मा के धर्म के प्रति अश्रद्धा होती है।

प्रश्न.3 दर्शन मोहनीय कर्म बंध के कारण कौन से हैं ?

उत्तर उन्मार्ग का उपदेश देना, सन्मार्ग का नाश करना, देवद्रव्य का भक्षण करना या उपेक्षा करना। चतुर्विध संघ का विरोध करना – निंदा करना।

प्रश्न.4 चारित्र मोहनीय कर्मबंध के कारण कौन से हैं ?

उत्तर विषय कषाय में अत्यंत आसक्त होना। दीक्षा लेने वालों को रोकना – अंतराय करना। सामायिक प्रतिक्रमण करते रोकना। धर्माराधना न कर सकें ऐसा वातावरण बनाना।

प्रश्न.5 चारित्र मोहनीय कर्मबंध का फल क्या है ?

उत्तर दीक्षा लेने की तीव्र अभिलाषा होने पर भी अनेक प्रयत्न करने से भी दीक्षा नहीं मिलना। धर्मानुष्ठान एवं श्रावकाचार का पालन नहीं कर सकता।

5. आयुष्य कर्म :

5. आयुष्य कर्म

यह कर्म जीव को 1) मनुष्य, 2) देव, 3) तिर्यंच, 4) नरक आदि चार गति में ले जाता हैं।

यह कर्म आत्मा के अक्षयस्थिति गुण को रोकता है।

इस कर्म के उदय से जीव को ज्यादा जीने की इच्छा हो तो भी ज्यादा नहीं जीता और जल्दी मरने की इच्छा हो तो भी नहीं मरता...यह कर्म (कैदी) बेडी से बंधे हुए मनुष्य के जैसा है... जिस तरह बेडी से बंधा हुआ मानव आजादी से नहीं जी सकता, उसी तरह आयुष्य कर्म के उदय के चलते जीवन से छुटकारा नहीं हो सकता। अगले भव हेतु यह कर्म बंधन इस भव में एक ही बार होता है। आयुष्य के तीसरे, नवमें, सताइसवें भाग में या मृत्यु के अवसर के पहले दो घड़ी में आगामी भव का आयुष्य बंधन होता है। यह कर्म बंधन के कारण ही तीथी के दिनों मे विशेष आराधना करने की होती है। जिससे शुभ आयुष्य बंधन हो...यह कर्म के उदय से जन्म–जरा–मृत्यु का अनुभव करना पड़ता है।

6. नाम कर्म :

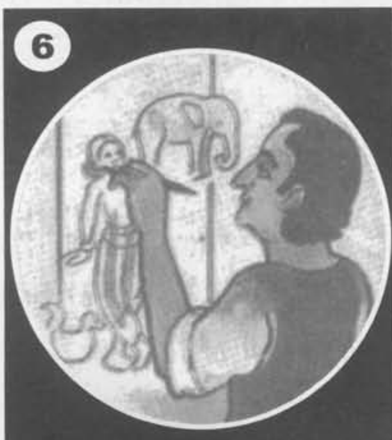

6. नाम कर्म

यह कर्म शरीर को : मोटा, पतला, काला, गोरा, लूला – लंगडा, स्त्री – पुरुष बनाता है।

यह कर्म आत्मा के अरूपी गुण को रोकता है। यह कर्म के उदय से छोटा–बडा, काला–गोरा, लम्बा–छोटा स्वरूपवान–कदरूप, सौभाग्यवान–दुर्भाग्यवान, प्रिय–अप्रिय होता है। यह कर्म चित्रकार के जैसा है। जिस तरह चित्रकार रंग भरता है उसी तरह यह कर्म जिस–जिस जन्म में जीव जाता है उस जन्म के अनुसार शरीर, आकार, कद बनाता है। गति–जाति–रूप–वैभव–सुख आदि का अभिमान करने से इस कर्म का बंधन होता है।

प्रश्न.1 शुभाशुभ नामकर्म बंध के कारण कौन से हैं ?

उत्तर प्रमाद का त्याग करना। मन, वचन, काया को शुभ प्रवृत्ति में जोड़ना। धर्मात्मा का आदर सम्मान करने से शुभनाम कर्म बंध होता है। इससे विपरीत अशुभ नामकर्म का बंध होता है।

7. गोत्र कर्म :

7. गोत्र कर्म

यह कर्म जीव को उच्च गोत्र एवं नीच गोत्र में ले जाता है।

यह कर्म आत्मा के अगुरुलघु गुण को रोकता है। इस कर्म के उदय से उच्चकुल–नीचकुल प्राप्त होता है। गोत्र कर्म कुम्हार के जैसा है। जिस तरह कुम्हार (शुभ–अशुभ) दो तरह के मटके बनाता है उसी तरह इस कर्म के उदय से ऊँच–नीच गोत्र में जाते हैं।

प्रश्न.1 ऊँच गोत्र कर्म बंध के कौन से कारण हैं ?

उत्तर स्वनिंदा करना, दूसरों की प्रशंसा करना, दूसरों के छोटे गुण को बढ़ा दिखाना और (स्व) स्वयं के छोटे दोष को बड़ा दिखाना, पूज्यों के प्रति आदर सन्मान करना, जिन भक्ति करना, अध्ययन–अध्यापन की रुचि रखना।

प्रश्न.2. ऊँच–गोत्रकर्म बंध का फल क्या है ?

उत्तर उच्च कुल में जन्म लेना। सर्वत्र प्रेम, आदर–सत्कार सन्मान पात्र बनना।

प्रश्न.3 नीच गोत्रकर्म बंध कौन से कारण से बंधता है ?

उत्तर दूसरों के दोष देखना, छोटे – दुर्गुण को बड़ा दिखाना। साधु–साध्वी की निंदा करना और स्व प्रशंसा करना।

प्रश्न.4 नीच गोत्रकर्म बंध का क्या फल है ?

उत्तर नीच कुलों में जन्म मिलना। किसी भी स्थान में आदर–सत्कार–सन्मान नहीं मिलना।

<u>8. अंतराय कर्म :</u>

8. अंतराय कर्म

यह कर्म जीव को दान, लाभ, भोग, उपभोग एवं वीर्य में अंतराय कराता है।

यह कर्म आत्मा के अनंतवीर्य गुण को रोकता है। इस कर्म के उदय से वस्तु पास में हो फिर भी दान–देने में और स्वयं के भोगने के उपयोग में नहीं आती। यह कर्म भंडारी जैसा है। राजा की इच्छा हो फिर भी भंडारी की इच्छा न होने के कारण दान नहीं दे सकता। उसी तरह इच्छा होने के बावजूद कर्म के उदय से दान या भोग नहीं कर सकता।

प्रश्न.1 कौन से कारण से अंतरायकर्म बंध बंधता है ?

उत्तर जिनेश्वर भगवान की पूजा भक्ति आदि में विघ्न करना। हिंसा करना, धर्म का नाश करना, दान देते हुए को रोकना, झूठ बोलना, धन लूट लेना, धन चुराना, दूसरों की भागीदारी में विघ्न करना। शक्ति होते हुए भी धर्म क्रिया में आलस करना। पक्षियों के पिंजरे में पानी, अन्न न डालना, पराई धरोहर (मिलकत) दबाना आदि।

प्रश्न.2 अन्तरायकर्म बंध का फल क्या है ?

उत्तर लक्ष्मीवान होते हुए भी कृपणता प्राप्त होती है। पेट भर खाना नहीं मिलता। मेहनत करने पर भी धन का लाभ नहीं होता है। निर्धनता, रोगी, खाने की अरुचि, अजीर्ण हो जाना, मनोकामना अपूर्ण रहना।

कर्म कुल आठ हैं। उसमें से सात कर्म का जीव समय–समय पर बंधन करता है और आयुष्य कर्म बंधन जीवन में एक बार करता है।

ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अंतराय यह चार कर्म आत्मा के मूल गुणों का घात करते

है इसलिए घाती कर्म कहलाते हैं और बाकी के अघाती कर्म कहलाते हैं।

प्रश्न पटाखे फोड़ने से आठों कर्म किस तरह बंधते है ?

उत्तर 1. कागज जलाने से ज्ञानावरणीय कर्म का बंध होता है।

2. निर्दोष जीवों की बिना कारण हिंसा करने से एवं उनके अंगोपांग का छेदन करने से दर्शनावरणीय कर्म का बंध होता है।
3. घोंसले में रहे पक्षी अचानक फटाके की आवाज से भयभीत होकर पीड़ित होते हैं, इससे वेदनीय कर्म का बंध होता है जैसे अपने द्वारा फोड़े हुए पटाखों की आवाज से पशुपक्षी भयभीत बनकर पीड़ा भोगते हैं वैसे ही अपने को भी दूसरे जन्म में पीड़ा भोगनी पड़ती है।
4. पटाखे फोड़ने से आनन्द होता है और उत्साह बढ़ता है तो मोहनीय कर्म का बंध होता है।
5. पटाखे फोड़ते अगर आयुष्य खत्म हो जाए और उसी समय मृत्यु हो जाए तो अशुभ आयुष्य कर्म बंधता है।
6. पटाखे फोड़ते अगर जल जाए या मर जाए तो नाम कर्म बंधता है।
7. स्वयं अगर पटाखे नहीं फोड़े किंतु दूसरों को प्रोत्साहित करे या निमित्त बने तो नीच गोत्र कर्म का बंध होता है।
8. किसी को नींद में, पढ़ाई में या शांतिपूर्वक ध्यान करते हुए को विघ्न करने से अंतराय कर्म बंधता है।

आ) छट्ठे आरे का वर्णन

पाँचवें आरे के अंत में अग्नि की बारीश होगी और उसमें भरत क्षेत्र के बहुत लोग जल जायेंगे। कुछ लोग तो वैताढ्य पर्वत के बिल में जाकर रहेंगे। वहाँ पर मनुष्य का शरीर 1 हाथ का, आयुष्य 20 वर्ष का होगा। दिन में सख्त ताप, रात में भयंकरं ठण्डी पडेगी, बिलवासी मानव, मछलियाँ और जलचरों को पकड़कर रेती में दबाएंगे, दिन के प्रचंड ताप में भुन जाने पर रात में उसका भक्षण करेंगे, परस्पर क्लेश करनेवाले, दीन-हीन, दुर्बल, दुर्गन्धी, रोगिष्ट, अपवित्र, नग्न, आचारहीन और माता-बहन-पत्नी के प्रति विवेकहीन होंगे। छः वर्ष की बालिका गर्भधारण कर बालकों को जन्म देगी। सुअर के सदृश अधिकाधिक बच्चे पैदाकर महाक्लेश का अनुभव करेंगी। धर्म पुण्य रहित, अतिशय दुःख के कारण अशुभ कर्म उपार्जन कर नरक-तिर्यंचादि गति प्राप्त करेंगे। इस आरे में दुःख ही दुःख है।

जिसे ऐसे छट्ठे आरे में जन्म नहीं लेना हो, उसे जीवनभर रात्रि भोजन, कंदमूल वगैरह नहीं खाना चाहिए।

इ) देवलोक का स्वरूप

देवता चार प्रकार के होते हैं। दो प्रकार के देव नीचे अधोलोक में रहते हैं और दो प्रकार के देव अपने ऊपर उर्ध्वलोक में रहते हैं। नीचे - भूत, प्रेत, व्यंतर एवं भवनपति, ऊपर - सूर्य, चंद्र, ज्योतिष एवं सौधर्म वगैरह वैमानिक देव हैं। जिस प्रकार के देव का आयु एवं गति बांधी हो वैसे देव की शय्या में जीव उत्पन्न होते है। उत्पन्न होते ही 16 वर्ष के युवान के जैसे शरीर वाले बन जाते हैं। मरण तक वैसे ही रहते हैं। मात्र मरण के 6 महीने पहले इनकी गले की फूल की माला मुरझा जाती है। जिससे मरण का समय

जानकर विलाप करते हैं। सभी देव अवधिज्ञानी या विभंगज्ञानी होते हैं। जमीन से चार अंगुल ऊपर चलते हैं, आँखोंकी पलके नहीं झपकती, शरीर पर पसीना नहीं होता, देवो के केश (बाल) हड्डी, दांत, मांस, नख, रोम, खून, चरबी, चमडी, मूत्र एवं विष्टा नहीं होती। वे वैक्रिय शरीर (मन चाहे वैसा छोटा-बड़ा) बना सकते हैं एवं वैक्रिय शरीर बनाते समय शौक से केशादि भी बनाते हैं। यह शरीर निर्मल कांति वाला, सुगंधि श्वासोश्वास वाला, मेल तथा पसीने से रहित होता है।

देवलोक में रात-दिन नहीं होते, विमानों के तल भाग का एवं दीवारों का तथा देवों के शरीर का ही प्रकाश अधिक होता है। देवलोक में चिंटियाँ, मच्छर वगैरह विकलेन्द्रिय जीव नहीं होते, देवों का उत्कृष्ट आयु 33 सागरोपम का होता है। 7 हाथ तक की इनकी काया होती है। जितने सागरोपम का आयुष्य होता है। उतने हजार वर्ष में देवो को एक बार खाने की इच्छा होती है एवं उतने ही पखवाडियो में एक बार श्वासोश्वास लेते हैं।

वहाँ इतना सब कुछ होने पर भी शांति नहीं होती है। उनमें लोभ ज्यादा होने से ईर्ष्या करके लडाई करते हैं। फिर मरकर लगभग पृथ्वीकाय, अप्काय, वनस्पतिकाय में उत्पन्न होते हैं। अच्छे देव भगवान के समवसरण में भी आते हैं। भक्ति करते हैं। वहाँ सब कुछ होने पर भी वे एक नवकारशी जितना भी पच्चक्खाण नहीं कर सकते, वहाँ कर्मक्षय कम होता है। पुण्य खाली हो जाता है। वे मोक्ष में नहीं जा सकते। वे भी हमेशा मोक्ष जाने के लिए मनुष्य बनने की इच्छा करते हैं। क्योंकि मनुष्य ही मोक्ष जा सकता है। वहाँ इतना सुख होने पर भी साधु भगवंत से कम सुख है। अर्थात् वे साधु को नमस्कार करते है।

प्रश्न : देवलोक में कौन जाते हैं ?

उत्तर : जो प्रभु की पूजा-दर्शन करता है, बडो की सेवा करनेवाला, झगडा नहीं करने वाला, कष्ट सहन करने वाला, रात्रि भोजन, कंदमूल, होटल, टी.वी. का त्यागी, सबके साथ मित्रता रखनेवाला, दीक्षा लेने वाला, सुपात्रदान, धर्म श्रवण की आदत, तप, श्रद्धा, दर्शन-ज्ञान-चारित्र की आराधना करनेवाला एवं मरण समय में पद्म और तेजोलेश्या के परिणाम रखनेवाले देवलोक में जाते हैं।

ई) नरक का स्वरूप

तिर्च्छा लोक के नीचे अधोलोक में 7 राजलोक में 7 नरक हैं। वहाँ संख्याता एवं असंख्याता योजन वाले नरकावास होते हैं। ये कुल नरकावास 84 लाख हैं। नारकी जीवों को उत्पन्न होने के गोखले होते हैं। यही उनकी योनि है। पापी जीव नरक में जाते हैं। वहाँ उत्पन्न होते ही अंतमुहूर्त (48 मिनट से कुछ कम समय) में शरीर गोखले से भी बड़ा हो जाने से नीचे गिरने लगता है। उतने में तुरंत परमाधामी वहाँ आकर पूर्वकृत कर्म के अनुसार उनको दुःख देने लगते हैं। जैसे मद्य पीने वाले को गरम सीसा पिलाते हैं। परस्त्री लंपटी को अग्निमय लोह पुतली के साथ आलिंगन कराते हैं। भाले से वींधते हैं, तेल में तलते हैं, भट्टी में सेकते हैं, घाणी में पीलते हैं, करवत से काटते हैं। पक्षी, सिंह आदि का रूप बनाकर पीडा देते हैं, खून की नदी में डूबाते हैं, तलवार के समान पत्तेवाले वन एवं गरम रेती में दौडाते हैं। वज्रमय कुंभी में जब इनको तपाया जाता है, तब

वे पीडा से 500 योजन तक उछलते हैं। उछलकर जब नीचे गिरते हैं तब आकाश में पक्षी एवं नीचे शेर, चीता वगैरह मुँह फाड़कर खाने दौड़ते हैं। इस प्रकार अति भयंकर वेदना होती है।

1. शीत वेदना : हिमालय पर्वत पर बर्फ गिरता हो एवं ठंडी हवा चल रही हो उससे भी अनंतगुणी ठंडी, निर्वस्त्र एवं पंख छेदने पर जैसी पक्षी की आकृति होती है वैसी अत्यंत विभत्स आकृति वाले नारकी जीवन सहन करते हैं।

2. उष्ण वेदना : चारों तरफ अग्नि की ज्वालाएँ हो एवं ऊपर सूर्य भयंकर तप रहा हो उससे भी अधिक ताप।

3. भूख की वेदना : दुनियाभर की सभी चीजें (खाद्य–अखाद्य) खा जाय तो भी भूख नहीं मिटती।

4. तृषा वेदन : सभी नदी, तालाब, समुद्र का पानी पी जाय तो भी शांत न हो ऐसी तृषा लगती है।

5. खुजली की वेदना : चाकू से खुजली करे तो भी खुजली नहीं मिटती।

6. पराधीनता : हमेशा पराधीन होकर रहते है।

7. बुखार : हमेशा शरीर खूब गरम रहता है।

8. दाह : अंदर से खूब जलता है।

9. भय : परमाधामी एवं अन्य नारकों का सतत भय रहता है।

10. शोक : भय के कारण सतत शोक रहता है।

दिवार आदि को अडने पर भी उनके शरीर के टुकड़े–टुकड़े हो जाते हैं। जमीन माँस, खून, श्लेष्म, विष्टा से भरपूर, रंग–बिभत्स, गंध–सड़े हुए मृत कलेवर के समान, रस–कड़वा एवं स्पर्श बिच्छु के समान होता है।

उ) नरक में जाने के चार द्वार है :

(1) रात्रि भोजन (2) परस्त्रीगमन (3) मांस भक्षण (4) कंदमूल भक्षण

नरक में कौन जाते हैं ? अति क्रूर सर्प, सिंहादि, पक्षी, जलचर बहुधा नरक में से आते हैं एवं पुन: वहाँ जाते हैं। जो झगड़ा करता है, टी.वी. देखता है, कंदमूल–अभक्ष्य (ब्रेड वगैरह) खाते हैं, वे नरक में जाते हैं तथा धन की लालच, तीव्र क्रोध, शील नहीं पालने पर, रात्रि भोजन, शराब, मांस, होटल आदि का खाना एवं दूसरों को संकट आदि में डालना वगैरह पाप एवं महा मिथ्यात्व एवं अति रौद्र ध्यान के कारण जीव नरक में जाकर ऐसी तीव्र वेदना को सहन करता है। वहाँ उसको बचाने एवं सहाय करने वाला कोई नहीं होता। वहाँ माँ–बाप या सगे–सम्बंधी भी नहीं होते। कोई सहानुभूति नहीं बताते।

B. नव तत्त्व

नवतत्त्व की होडी और समुद्र के दृष्टांत से बोध - समझुती

जीव को संसार से पार उतरने में नवतत्त्व का ज्ञान अति आवश्यक एवं उपयोगी है।

नवतत्त्वों के नाम, व्याख्या एवं भेद :

नौ तत्त्व – पदार्थ के स्वरूप

तत्त्व के नाम	भेद	व्याख्या
1. **जीव**	14	जो जीता है, प्राणों को धारण करता है, जिसमें चेतना है, वह जीव है; यथा मानव, पशु, पक्षी आदि।
2. **अजीव**	14	जिसमें जीव, प्राण, चेतना नहीं है, वह अजीव है, यथा टेबल, पलंग, धर्मास्तिकाय आदि।
3. **पुण्य**	42	शुभ कर्म पुण्य है अर्थात् जिसके द्वारा जीव को सुख का अनुभव होता है, वह पुण्य है।
4. **पाप**	82	अशुभ कर्म पाप है अर्थात् जिसके द्वारा जीव को दुःख का अनुभव होता है, वह पाप है।
5. **आश्रव**	42	कर्म के आने का रास्ता अर्थात् कर्म बंध के हेतुओं को आश्रव कहते हैं।
6. **संवर**	57	आते हुए कर्मों को रोकना, वह संवर है।
7. **निर्जरा**	12	कर्मों का अंशतः क्षय होना, वह निर्जरा है।
8. **बंध**	4	आत्मा और कर्मों का दूध और पानी की तरह संबंध होना वह बंध है।
9. **मोक्ष**	9	संपूर्ण कर्मों का नाश या आत्मा के शुद्ध स्वरूप का प्रगटीकरण होना वह मोक्ष है।
कुलभेद	**276**	

प्रश्न : नवतत्त्वों को समझकर क्या करना चाहिए ?

नवतत्त्वों को समझकर उसमें से छोड़ने योग्य को छोड़ना, ग्रहण करने योग्य को ग्रहण करना एवं जानने योग्य को जानना। वे इस प्रकार :

ज्ञेयादि का स्वरूप

नाम	**व्याख्या**	**तत्त्व**	**भेद**
ज्ञेय	जानने योग्य तत्त्व	जीव, अजीव	28
हेय	छोड़ने योग्य तत्त्व	पाप, आश्रव, बंध	120
उपादेय	ग्रहण करने योग्य तत्त्व	पुण्य, संवर, निर्जरा, मोक्ष	128
		कुल	**276**

हेय = छोड़ने योग्य तत्त्व = पाप, आश्रव, बंध तथा पापानुबंधि पुण्य ये सब छोड़ने जैसे हैं। इनसे अपनी आत्मा मलीन बनती है।

उपादेय= ग्रहण करने योग्य तत्त्व = पुण्यानुबंधि पुण्य, संवर, निर्जरा एवं मोक्ष ये जीवन में अपनाने जैसे तत्त्व है। इससे आत्मा धर्म द्वारा मोक्ष को पाती है।

ज्ञेय = जानने योग्य तत्त्व = जीव, अजीव, ये दोनों जानने योग्य हैं। इससे जीव का महत्त्व समझ में आता है एवं अजीव का ममत्व टूटता है।

ऐसे तो सभी तत्त्व जानने योग्य है, परन्तु जीव और अजीव ये दो तत्त्व सिर्फ जाने जा सकते हैं, लेकिन इनका त्याग अथवा ग्रहण नहीं किया जा सकता। इसलिए ये दोनों तत्त्व ज्ञेय माने गये हैं। शेष सात तत्त्वों की जानकारी प्राप्त कर, हेय का त्याग करना चाहिए तथा तत्त्वों को जीवन में अपनाना चाहिए।

नाँव के दृष्टांत से नवतत्त्व की समझ

समुद्र में एक नाँव (नौका) है। वह एक जड़ वस्तु है। उसे अजीव कहा जाता है। अजीव वस्तु को चलाने के लिए उस नौका में जीव यानी मनुष्य बैठा है। अनुकूल पवन–जो जीव को सुख की दिशा में ले जाता है, वह पुण्य है। प्रतिकूल पवन – जो जीव को दुःख की दिशा में ले जाता है, वह पाप है। नौका में छेद पड़ जाए और उस नौका में पानी भरने लगे तो उसे आश्रव कहा जाता है। जीव उस छेद को किसी वस्तु से बंद कर दे उसे संवर कहा जाता है। छेद को बंद करने के बाद जीव नौका के अंदर रहे हुए पानी को बाहर निकालता है उसे निर्जरा कहते हैं। बाद में जो नाँव का लकड़ा भीगा हुआ होता है उसे बंध कहा जाता है। जीव उस नाँव को सुखाने के लिए समुद्र के तट पर आकर उस नौका को बांधकर अपने घर लौटते हैं। उसे मोक्ष कहा जाता है।

नवतत्त्व के ज्ञान से अमूल्य लाभ

इन जीवादि तत्त्वों को जो जानता है, वह सम्यग्दर्शन पाता है। हो सकता है कि मंद बुद्धि के कारण स्वयं नवतत्त्वों का सूक्ष्म ज्ञान कोई न भी समझ पाए फिर भी अन्तर के भावों से इन नवतत्त्वों के प्रति अटल श्रद्धा रखने से उसको भी सम्यग्दर्शन प्राप्त हो सकता है।

सम्यग्दृष्टि के हृदयोद्गार

1. श्री जिनेश्वर परमात्मा द्वारा कथित सभी वचन सत्य ही होते हैं, कदापि असत्य नहीं हो सकते, क्योंकि उनमें असत्य के हेतु – क्रोध, मान, माया, लोभ, भय तथा हास्य आदि सभी दोषों का सर्वनाश हो चुका है।
2. 'जो श्री जिनेश्वर भगवान ने कहा है, वह सत्य और शंका रहित है' ये शास्त्र वचन सम्यग् दृष्टि की अटल श्रद्धा को व्यक्त करते हैं।

हमें सम्यग् दर्शन का स्पर्श हुआ या नहीं उसका निश्चय सम्यक्त्व के इन पाँच लक्षणों द्वारा हो सकता है:

1. **शम** :– सर्व जीवों के प्रति समभाव रखना, अपराधी का भी मन से बुरा न विचारना। सभी का कल्याण हो, सदा ऐसी पवित्र भावना रखना।

2. **संवेग** :– देव और मनुष्य सम्बन्धी भोग–सुख, दुःख रूप लगे साथ ही उनके प्रति हेय बुद्धि रखकर केवल आत्मिक सुख की तीव्र अभिलाषा रखना।

3) **निर्वेद** :– संसार में जन्म, जरा, मरण, आधि, व्याधि और उपाधि के प्रत्यक्ष दर्दनाक दुःख देख कर उनसे छूटने की तीव्र इच्छा रखना।

4) **अनुकम्पा** :– दुःखी जीवों के दुःख को देखकर, उनके दुःख दूर करने की भावना रखना। रोग, शोक, दरिद्रता आदि दुःख दूर करने की भावना, वह द्रव्य अनुकम्पा है और धर्महीन जीवों के मिथ्यात्व आदि दोष दूर करने की अर्थात् धर्म की प्राप्ति कराने की भावना वह भाव अनुकम्पा है।

5. **आस्तिकता** : श्री जिनेश्वर भगवान द्वारा बताया हुआ तत्त्व ज्ञान ही सत्य है, ऐसा मानना और सुदेव, सुगुरु, सुधर्म पर अटल श्रद्धा रखना।

<u>जीव तत्त्व</u>

जीव तत्त्व की कुछ विचारणा :–

* विश्व की व्यापकता केवल दो तत्त्वों पर ही निर्भर है। ये दो तत्त्व हैं, जीव और अजीव।

* जिसमें चेतना है, वह जीव है। जीव तत्त्व के ज्ञान से आत्मा के स्वरूप की पहचान होती है।

* मैं, ज्ञानमय, सुखमय और आनन्दमय हूँ। * चैतन्य मेरा स्वभाव है। * मोक्ष ही मेरा ध्येय है।

संसारी अवस्था में मेरा सहज आत्मस्वरूप कर्मों से आच्छादित हो गया है। कर्मों के इन आवरणों को दूर हटाने के लिए मुझे हेय, ज्ञेय, उपादेय तत्त्वों की पहचान प्राप्त करनी चाहिये। हेय–पाप, आश्रव एवं बंध तत्त्व हैं, इनका त्याग करना चाहिए और पुण्य, संवर, निर्जरा जो मुक्ति मार्ग के साधन हैं, उनका सहारा लेकर आत्मा के अनंतज्ञान, दर्शन और चारित्र गुण को प्रगट करने का प्रयत्न करना चाहिए।

जीव अरूपी होने से आँखों से नहीं दिखता फिर भी जीवंत व्यक्ति के शरीर की विशिष्ट चेष्टाओं के द्वारा शरीर में जीव होने का हम अनुमान लगा सकते हैं एवं इसी से जीव के स्वतंत्र अस्तित्व की सिद्धि भी होती है। शरीर में से जीव के निकल जाने पर शरीर की सारी प्रवृत्तियाँ रुक जाती हैं, वही मृत्यु है। भिन्न–भिन्न अपेक्षा से जीव के अनेक भेद हैं। उन भेदों के ज्ञान से हमारी दृष्टि विशाल बनती है।

सर्व सिद्धात्माओं में और सर्व संसारी जीवों में चेतना शक्ति अवश्य होती है। इस अपेक्षा से सभी जीवों की एकता और सादृश्यता का ज्ञान होता है। वह ज्ञान जीव को आध्यात्मिक साधना के मार्ग में आगे बढ़ने के लिए प्रेरक बनता है और संसार के समस्त जीवों के प्रति मैत्रीभाव प्रगट करने की शिक्षा देता है।

जीव स्वयं अरूपी है – लेकिन वह संसारी अवस्था में पुद्गल से बने शरीर में रहता है। एवं शरीर के आकार को धारण करता है। यद्यपि स्वभाव से सर्व जीव एक समान होने से उनके भेद नहीं हो सकते फिर भी कर्म के उदय से प्राप्त शरीर की अपेक्षा से जीव के दो, तीन, चार, पाँच, छः, चौदह और विस्तृत रूप

से यावत् 563 भेद भी हो सकते हैं। बिना प्राण के प्राणी जीवित नहीं रह सकता। भाव प्राण जीव के ज्ञानादि स्वगुण हैं, जो सिद्धात्माओं में पूर्णतया प्रगट हैं तथा संसारी आत्मा में अपूर्ण–न्यूनाधिक होते हैं। संसारी जीव को जीने के लिए द्रव्य प्राणों और पर्याप्तियों की अपेक्षा रहती है।

वर्तमान समय में हम संज्ञी पंचेन्द्रिय हैं। विश्व के अन्य जीव जन्तुओं से हम अधिक बलवान और पुण्यवान हैं। हमें 10 प्राण, 6 पर्याप्तियाँ और आंशिक रूप में भाव प्राण रूप विशिष्ट शक्ति मिली है। इन विशिष्ट शक्तियों का सदुपयोग स्व–पर हित में करने के लिए सदैव उद्यमवंत रहना चाहिए, क्योंकि बार–बार ऐसी विशिष्ट शक्तियाँ प्राप्त होना सुलभ नहीं है।

उत्कृष्ट पुण्य से प्राप्त ये शक्ति खत्म न हो जाय इसका पूरा ख्याल रखकर स्व–पर हित की पवित्रतम साधना में प्रयत्नशील बने रहना यह मनुष्य जीवन का कर्तव्य है।

(अ) विभिन्न दृष्टि से जीव के प्रकार :–

1. जीव का एक प्रकार – चेतना की अपेक्षा से

2. जीव के दो प्रकार – त्रस और स्थावर की अपेक्षा से

3. जीव के तीन प्रकार – पुरुषवेद, स्त्रीवेद, नंपुसकवेद की अपेक्षा से

4. जीव के चार प्रकार – देवगति, मनुष्यगति, तिर्यंचगति, नरकगति की अपेक्षा से

5. जीव के पाँच प्रकार – एकेन्द्रीय, बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चउरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय की अपेक्षा से

6. जीव के छ: प्रकार – पृथ्विकाय, अप्काय, तेऊकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय, त्रसकाय की अपेक्षा से

(आ.) प्राण :–जीने के साधन को प्राण कहते हैं।

प्राण के मुख्य दो प्रकार हैं – **1. द्रव्य प्राण, 2. भाव प्राण।**

संसारी जीवों में द्रव्य और भाव ये दोनों प्राण होते हैं। सिद्धों में सिर्फ भाव प्राण होते हैं। उनमें द्रव्य प्राण नहीं होते हैं।

द्रव्य प्राण	**10**	**भाव प्राण 4**
1. इन्द्रिय	5	1. दर्शन
2. बल	3	2. ज्ञान
3. श्वासोच्छ्वास	1	3. चारित्र
4. आयुष्य	1	4. वीर्य वगैरह
	10	

इन्द्रिय – 5 :– स्पर्शेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, चक्षुरिन्द्रिय, श्रोतेन्द्रिय

बल 3 :– मन बल, वचन बल, काय बल

-: जीव के चौदह भेद :-

जीव		भेद
1. एकेन्द्रिय	2	सूक्ष्म और बादर
2. बेइन्द्रिय	1	बादर
3. तेइन्द्रिय	1	बादर
4. चउरिन्द्रिय	1	बादर
5. पंचेन्द्रिय	2	संज्ञी और असंज्ञी
कुल	7	**7 पर्याप्त+7अपर्याप्त=कुल 14 भेद**

जीव के लक्षण : ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप और वीर्य ये जीव के लक्षण (=लिंग) है। प्रत्येक जीव में ये लक्षण यथायोग्य प्राप्त होते हैं।

प्रत्येक जीव को प्राप्त इन्द्रियाँ प्राण एवं पर्याप्तियाँ

जीव	इन्द्रिया	द्रव्य प्राण	पर्याप्तियाँ
एकेन्द्रिय	1. स्पर्शेन्द्रिय	1. स्पर्शेन्द्रिय 2. कायबल 3. श्वासोच्छ्वास 4. आयुष्य	1. आहार 2. शरीर 3. इन्द्रिय 4. श्वासोच्छ्वास
बेईन्द्रिय	1. स्पर्शेन्द्रिय 2. रसनेन्द्रिय	1. स्पर्शेन्द्रिय 2. रसनेन्द्रिय 3. कायबल 4. वचनबल 5. श्वासोच्छ्वास 6. आयुष्य	1. आहार 2. शरीर 3. इन्द्रिय 4. श्वासोच्छ्वास 5. भाषा
तेईन्द्रिय	1. स्पर्शेन्द्रिय 2. रसनेन्द्रिय 3. घ्राणेन्द्रीय	1. स्पर्शेन्द्रिय 2. रसनेन्द्रिय 3. घ्राणेन्द्रिय 4. कायबल 5. वचनबल 6. श्वासोच्छ्वास 7. आयुष्य 5. भाषा	1. आहार 2. शरीर 3. इन्द्रिय 4. श्वासोच्छ्वास
चउरिन्द्रिय	1. स्पर्शेन्द्रिय 2. रसनेन्द्रिय 3. घ्राणेन्द्रिय 4. चक्षुरिन्द्रिय	1. स्पर्शेन्द्रिय 2. रसनेन्द्रिय 3. घ्राणेन्द्रिय 4. चक्षुरिन्द्रिय 5. कायबल 6. वचनबल 7. श्वासोच्छ्वास 8. आयुष्य	1. आहार 2. शरीर 3. इन्द्रिय 4. श्वासोच्छ्वास 5. भाषा
पंचेन्द्रिय (असंज्ञी)	1. स्पर्शेन्द्रिय 2. रसनेन्द्रिय 3. घ्राणेन्द्रिय 4. चक्षुरिन्द्रिय 5. श्रोतेन्द्रिय	5. पांच इन्द्रिय 6. कायबल 7. वचनबल 8. श्वासोच्छ्वास 9. आयुष्य	1. आहार 2. शरीर 3. इन्द्रिय 4. श्वासोच्छ्वास 5. भाषा
पंचेन्द्रिय (संज्ञी)	1. स्पर्शेन्द्रिय 2. रसनेन्द्रिय 3. घ्राणेन्द्रिय 4. चक्षुरिन्द्रिय 5. श्रोतेन्द्रिय	5. पांच इन्द्रिय 6. कायबल 7. वचनबल 8. मनबल 9. श्वासोच्छ्वास 10. आयुष्य	1. आहार 2. शरीर 3. इन्द्रिय 4. श्वासोच्छ्वास 5. भाषा 6. मन

नवतत्त्व में रूपी–अरूपी भेद

रूपी :– जिसमें रूप, रस, गंध, स्पर्श हो उसे रूपी कहते हैं।

अरूपी :– जो रूप, रस, गंध, स्पर्श रहित हो उसे अरूपी कहते हैं।

रूपी तत्त्व :– जीव, अजीव (पुद्गल), पुण्य, पाप, आश्रव, बंध।

अरूपी तत्त्व :– अजीव (पुद्गल सिवाय), संवर, निर्जरा, मोक्ष।

C. पर्व एवं आराधना

सामन्यतः परभव का आयुष्य पर्व तिथि के दिन निर्धारित होता है, अतः पर्व दिन धर्ममय हो तो दुर्गति का आयुष्य तय नहीं होता। हर महीने की दूज आदि 12 तिथि की आराधना करनी। ये भी न बन पाए तो कम से कम 5 तिथि – सुद 5, दो आठम, दो चौदस की आराधना तो निश्चय ही करनी। बाकी 12 में से एकाध तिथि की उस उद्देश्य से उपवास आदि से खास आराधना की जा सकती है। जैसे ग्यारस 11 गणधर की तथा 11 अंग की आराधना के लिये आराधी जाती है।

सभी पर्वतिथियों में कदाचित अच्छे तरीके से आराधना न कर सकें तो भी शक्ति के अनुसार कोई न कोई विशेष त्याग, जिनभक्ति , दान, प्रतिक्रमण, आरंभ–संकोच आदि से आराधना करें।

कल्याणक तिथियों में अगर कुछ भी न बने तो कम से कम उन–उन प्रभु के नाम की उस–उस कल्याणक की नवकारवाली अवश्य गिनें जिससे अर्हद्भक्ति का भाव जगता और बढता रहेगा।

चौमासी चौदस को उपवास, पौषध, चौमासी देववंदन आदि किये जाते है। आराधक आत्मा को पक्खी चौदस के दिन उपवास, चौमासी चौदस के दिन दो उपवास और संवत्सरी के दिन अट्ठम अवश्य करना चाहिये। इसमें अगर चौदस को छट्ठ की शक्ति न हो तो ग्यारस और चौदस को अलग–अलग उपवास करने पर भी चौमसी पर्व तप की आराधना पूरी होती है।

कार्तिक सुद 1 से नया वर्ष प्रारम्भ होता है। अतः सुबह से पूरा वर्ष धर्ममय, अच्छी धर्मसाधना से एवं सुन्दर चित्त –समाधि से पसार हो जाय उसके लिये नवस्मरण, गौतमरास सुनना, फिर चैत्य परिपाटी, फिर स्नात्र–महोत्सव के साथ विशेष प्रभु भक्ति करें।

कार्तिक सुद 5 सौभाग्य पंचमी है। इस दिन ज्ञान की आराधना के लिये उपवास पौषध, ज्ञानपंचमी का देववंदन, 'नमो नाणस्स' की 20 माला के 2000 जाप किये जाते है।

मगसर सुद 11 मौन ग्यारस है, अतः पूरा दिन–रात मौन रखकर उपवास के साथ पौषध करना, मौन ग्यारस के देववंदन, तथा उस दिन हुए 90 भगवान के 150 कल्याणक की 150 माला गिनें।

मगसर वद 10 पार्श्वनाथ प्रभु का जन्म कल्याणक है अतः उस दिन खीर का एकासणा या आयंबिल कर पार्श्व प्रभु की स्नात्रादि से भक्ति तथा त्रिकाल देववंदन और 'ॐ ह्रीँ श्री पार्श्वनाथ अर्हते नमः' की 20 माला गिनी जाती है। विशेष में मगसर वद 9 को एकासणा, तथा मगसर वद 11 को पार्श्वनाथ

दीक्षा कल्याणक होने से एकासणा किया जाता है। फिर हर महीने की वद 10 को यह आराधना करनी चाहिये।

मेरु तेरस – पोष वद 13 – इस युग के प्रथम धर्म प्रवर्तक श्री ऋषभदेव तीर्थंकर प्रभु का मोक्ष गमन दिन है । इस दिन उपवास, पांच मेरु की रचना तथा घी के दीपक करके ' श्री ऋषभदेव पारंगताय नमः' के 2000 जाप किये जाते है।

फागण वद 8 ऋषभदेव प्रभु का जन्म और दीक्षा कल्याणक दिन है। यहां पिछले दिन से छट्ठ या अट्ठम कर वर्षीतप शुरु किया जाता है। इसमें एकान्तर उपवास – बियासणा सतत् चलते है। बीच में अगर चौदस आए तो उपवास ही करना , चौमासी का छट्ठ ही करना। ऐसे सलंग चलते दूसरे वर्ष की वैशाख सुद 2 तक तप चलता है।

वैशाख सुद 3 अक्षय तृतीया के दिन वर्षीतप का पारणा सिर्फ इख के रस से पारणा होता है। ऋषभदेव प्रभु ने तो सलंग सिर्फ चौविहार उपवास लगभग 400 दिन तक किये थे और श्रेयांसकुमार ने वैशाख सुद 3 को पारणा कराया था। इसी का वर्षीतप सूचक है।

वैशाख सुद 11 भगवान महावीर ने पावापुरी में शासन की स्थापना की थी और 11 गणधर दीक्षा , द्वादशांगी आगम रचना, और चतुर्विध संघ रचना इस दिन हुई थी । इसकी सकल संघ में सामुहिक उपासना होनी चाहिये।

दिवाली के दिन प्रभु महावीर प्रभु ने जो पिछले दिन सुबह धर्मदेशना शुरु की थी वो सलंग दिवाली के रात्री के अंतिम प्रहर तक चली, यानि कि 16 प्रहर देशना चली, फिर प्रभू का निर्वाण हुआ। लोगो ने भावदीपक के बुझ जाने के स्मृतिरुप दीपक जलाये और दीपावली पर्व शुरु हुआ।

D. अठारह पाप स्थानक

पापस्थानक : जिन कार्यों को करने से या जिन भावों के सेवन से आत्मा पापकर्म को बांधता है उन्हें पापस्थानक कहते हैं। पाप बंध का कारण यानि जो कार्य पाप बंध के कारण है। उसे पापस्थानक कहते हैं। । ये कुल अट्ठारह प्रकार के हैं।

1. **प्राणातिपात** – प्राण+अतिपात यानि किसी के प्राणों का नाश करना, पीडा पहुँचाना।
   इसका अर्थ है हिंसा करना, मारना, विराधना करना आदि। प्राण शब्द से 10 प्रकार के प्राण समझने हैं। वे हैं (5) पाँच इन्द्रिय (6) मन बल (7) वचन बल (8) कायबल (9) श्वासोच्छवास और (10) आयुष्य। इसलिए इनमें से किसी भी प्राणों की हिंसा करना या सिर्फ चोट पहुँचाने से भी 'प्राणातिपात' का दोष लगता है।

2. **मृषावाद** – झूठ बोलने वाला ।

मृषा+वाद – झूठ बोलना या वो कडवा वचन जो सत्य हो तो भी नहीं बोलना चाहिये । जिससे किसी का बुरा हो, नुकसान हो, ऐसा सच भी नहीं बोलना चाहिये, क्योंकि ऐसा करने से भी 'मृषावाद' का दोष लगता है। शास्त्रों में कहा गया है : ''सदा तोल मोल के बोल'' । यानि हित मित एवं मधुर वचन बोले।

3. **अदत्तादान** – चोरी ।

अदत्त+आदान = वो वस्तु लेना जो उसके मालिक ने स्वयं नहीं दी हो, वह अदत्तादान यानि चोरी कहलाती है। और किसी को बिना पूछे उसकी चीजे लेना और फिर लौटाना यह भी चोरी है।

4. **मैथुन** – अब्रह्म

ब्रह्मचर्य व्रत का पालन नहीं करना। स्त्री को पुरूष से एवं पुरूष को स्त्री से दूर रहना।

5. **परिग्रह** – धन, दौलत, जमीन आदि के प्रति मूर्च्छा

धन, जमीन, जायदाद आदि की तीव्र इच्छा एवं लोभ से ग्रहण करना, इकट्ठा करना। इसमें कपड़े आदि भी जरूरत से ज्यादा रखने पर परिग्रह का दोष लगता है । ज्यादा परिग्रह मनुष्य को दुर्गति में ले जाता है । आपस में वैर या दुश्मनी करवाने वाला कारण यही है। मानसिक पीड़ा का मूल कारण यही है।

6. **क्रोध** – गुस्सा, कोप।

क्रोध करने से जीव को कोई होश नहीं रहता। वह आवेश में आकर बहुत गलत काम करता है जिससे बाद में पछताना पड़ता है। इससे बुद्धि का नाश होता है। जैसे चंडकौशिक की तरह पूर्वभव में किये क्रोध के कारण हुई उसकी दुर्गति।

7. **मान** – गर्व, घमंड, अहंकार

मान से विनय गुण का नाश होता है। विनय के बिना शिक्षा प्राप्त नहीं होती और ज्ञान के अभाव में जीवन प्रगति नहीं कर सकता। उसका कुछ समय बाद पतन निश्चित होता है। जैसे दुर्योधन, रावण और कंस, वगैरह ।

8. **माया** – छल, कपट, धोखा

माया यानि कपट, धोखा आदि करने से हमारे जीवन में सरलता नहीं रहती। और सरलता बिना धर्म नहीं टिक सकता। और धर्म के बिना मनुष्य का जीवन पशु समान होता है। माया के पीछे जीव कई अन्य पापों का भी बंध करता है। इस माया के कारण ही तीर्थंकर को भी नारी मल्लि के रूप में जन्म लेना पडा।

9. **लोभ** – तृष्णा, लालच

धन, वैभव, सत्ता, अधिकार, राज्य आदि को पाने की प्रबल कामना। इसके पीछे जीव अपने कार्य और अकार्य का आभास भूल जाता है। उसे किसी भी इच्छा के पूर्ण होने पर संतोष नहीं होता। और अधिक से अधिक प्राप्त करने की लालसा में जीव पापों को बाँधता है। यह लोभ तो सभी सद्गुणों का नाश करता है। जैसे मम्मण शेठ।

6,7,8,9 = क्रोध, मान, माया और लोभ ये चारो कषाय है। जो जीव को अपने मूल स्वरूप से भटकाकर संसार को बढ़ाते हैं। ये पाप उपार्जन के मूल कारण है।

10. **राग** – प्रेम

किसी भी व्यक्ति या वस्तु के प्रति अत्यंत आकर्षण होना। किसी भी गलत सिद्धांत को भी अच्छा मानना और स्त्री, पुत्र, पुत्री आदि के प्रति आसक्ति (प्रेम भाव) रखना वह राग है। जैसे रावण को सीता के प्रति राग, जैसे देवानंदा को पूर्वभव में हार के प्रति राग, उनके दुःख का कारण बना। परन्तु श्री गौतमस्वामी प्रभु वीर के पक्के रागी थे, उनका यह राग ही उनके केवल्य प्राप्ति में अवरोधक बना था। यह प्रशस्त राग होने के कारण गलत नहीं था। शुरूआत में धर्म एवं धर्मी का राग आत्मा के विकास का कारण बनता है।

11. **द्वेष** – तिरस्कार

जो बिल्कुल ही अच्छा न लगे, उसका एकदम घमंड से या गुस्से से तिरस्कार करना। दूसरों के गुणों को या धन संपत्ति को देखकर जलना और उसका बुरा करना या बुरा सोचना वह द्वेष नाम का पापस्थानक है। इसका उदाहरण है –

द्रोपदी, जो महाभारत का कारण बनी।

राग–द्वेष हमारी आत्मा के सबसे बड़े शत्रु हैं। इससे जीव को सिर्फ पीड़ा, दुःख और दुर्गति ही मिलती है। इसी के कारण जीव अपने समभाव (समता) को छोड़कर विभाव दशा में आता है। जहाँ राग होता है वहीं द्वेष भी होता है। इसलिए इनको छोड़ना ही श्रेयस्कर है। आत्म हितकर है।

12. **कलह** – झगड़ा करना, लड़ाई करना।

यह क्रोध, मान, माया, लोभ, राग या द्वेष करने से उत्पन्न होता है। छोटे–छोटे झगड़े से ही बड़ी–बड़ी दुश्मनी होती है। और उस दुश्मनी में लोग बहुत से भयानक कार्य कर देते हैं जिसके लिये उसे हमेशा पछताना पड़ता है। इसलिए इन लड़ाई, झगड़े को सरलता से सुलझाना चाहिए, बढ़ाना नहीं। किसी भी देश समाज व पंथ के विकास की राह का सबसे बडा रोडा, मानव मूल्यों के नाश का कारण परिवार विघटन का बीजयही कलह है। कलह ही संस्कृति, समाज व जन संहार के पतन का कारण है।

13. **अभ्याख्यान** – सफेद झूठ बोलकर किसी पर झूठे इल्जाम (दोषारोपन) लगाना।

किसी व्यक्ति पर उसी के सामने गलत इल्जाम लगाना । जैसे झांझरीया मुनि।

14. **पैशुन्य** – चुगली करना।

किसी के पीठ पीछे उसकी बुराई करना, चुगली करना। सच्चे, झूठे दोषों को पीठ पीछे खोलना। ऐसा करने से पैशुन्य नाम का दोष लगता है। अजैन रामायण में मंथरा की यही भूमिका दशरथ के मौत का कारण बनी। परन्तु जैन रामायण के अनुसार दशरथ मोक्ष में गये। ऐसी कितनी ही बाते जैन रामायण को पढ़ने से मालूम होती है।

15. **रति–अरति** – खुशी (हर्ष) और गम (उद्वेग)

रति – जो वस्तु हमें पसन्द हो उसकी प्राप्ति होने पर खुश होना और जो वस्तु या व्यक्ति अच्छे नहीं लगते हो वह दूर होने पर खुशी व्यक्त करना वह 'रति' नाम का दोष है। समता बिना सिद्ध बनना असंभव है। अत: हर हालात मे मन में समता भाव रखना ही, श्रेयस्कर है।

अरति – जो व्यक्ति या वस्तु हमें पसन्द हो, उसका दूर होना और जो अच्छी नहीं लगती हो ऐसे व्यक्ति या वस्तु के मिलने पर दुःखी होना, उद्वेग पैदा करना।

हमें सुख हो या दुःख, दोनों ही परिस्थितियों में प्रसन्न ही रहना चाहिये ना सुख में खुशी और ना ही गम में दुखी होना। अनुकूलता में सुखी एवं प्रतिकुलता से दुःखी होनेवाली आत्मा, अपनी आत्मा का भव भ्रमण बढ़ाती है।

16. **पर परिवाद** – दूसरों की बुराई करना और खुद का बढ़ा–चढ़ाकर बोलना। दूसरों के विषय में गलत बोलना वह पर परिवाद है। लेकिन जो सत्पुरुष होते हैं वे स्वयं के दोष को प्रकट करते हैं। उन्हें देखकर दूर करने की कोशिश करते हैं। और दूसरों के दोषों के प्रति उपेक्षा भाव रखते हैं। क्योंकि 'स्वयं की प्रशंसा' और 'पर निन्दा' जैसा कोई पाप नहीं।

17. **माया मृषावाद** – छल, धोखे के साथ झूठ बोलना।
उदा.– महाभारत की लडाई में कृष्ण द्वारा कहा गया शब्द 'अश्वथामा मारा गया'' ।

कपट, छल आदि को करने के लिए, दूसरों को ठगने के लिए जो झूठ बोला जाता है वह माया मृषावाद नामक पापस्थानक है। पांडवों को जलाने के लिए बनाया गया लाक्षागृहइसी का उदाहरण है।

18. **मिथ्यात्व शल्य** – झूठा ज्ञान होना
परमात्मा के बताये गये तत्वों के स्वरूप को सच्चा न मानकर अन्य पदार्थों पर विश्वास रखना। सुदेव (अरिहंत, सिद्ध) सुगुरु (पंच महाव्रत धारी जैन साधु) और सुधर्म (जैन धर्म) इन पर श्रद्धा न होना वह मिथ्यात्व । और 'शल्य' यानि कांटा क्योंकि जब तक मिथ्यात्व रूपी कांटा हमारे जीवन में रहेगा हमें सच्चा ज्ञान नहीं मिल सकता। मिथ्यात्व ही सब पापों की जड़ है। प्रभु आदिनाथ के पौत्र मरिचि के संसार वृद्धि का मूल कारण यही था।

उपरोक्त अठारह पापस्थानकों को हमें मन, वचन एवं काया से त्याग करना चाहिए। यथा शक्ति इनके सेवन से बचकर जीवनयापन करना चाहिये। ऐसा करने से पाप कर्मों से बच सकते हैं।

14. जैन भूगोल

A. समुद्र में दिखाई देने वाला जलयान

आज स्कूलों में पृथ्वी गोल गेंद जैसी है ये समझाने के लिये सबसे पहला प्रमाण हमको यह दिया जाता है कि समुद्र से आता हुआ जहाज जो दूर है, उसका पहले टोच (मस्तूल) वाला भाग दिखाई देगा। जैसे–जैसे जहाज नजदीक आता है, वैसे–वैसे उसका मध्यभाग फिर नीचे का भाग और बिलकुल नजदीक आ जाने पर पूरा जहाज दिखाई देता है।

इस प्रकार हम सब पढकर आये हैं और स्कूलों में आज भी विद्यार्थी यही पढ रहे हैं।

इसका कारण यह बताया गया है कि जब जहाज का सिर्फ टोच (मस्तूल) भाग दिखाई देता है, तब पृथ्वी की गोलाई अवरोध बनने से नीचे का बाकी भाग दिखाई नहीं देता है। फिर जैसे–जैसे इस गोलाई को पार करके जहाज नजदीक आता है, वैसे–वैसे पृथ्वी की गोलाई से ढका हुआ भाग दिखाई देगा। अंत में, पृथ्वी की गोलाई पार करते जहाज बिलकुल नजदीक आ जायेगा, तब पूरा दिखाई देता है। इसमें हमको ये भी बताया जाता है कि 9 कि.मी. की दूरी में 1.47 मीटर की गोलाई। 10 कि.मी. की दूरी में 2.16 मीटर और 100 कि.मी. की दूरी में 195 मीटर (633.75 फीट) की गोलाई (कर्वेचर) अवरोध रूप बनने से दूर की स्टीमर या जहाँज नहीं दिखाई देता है। इसी तरह किनारे से दूर जाते समय जहाज का पेहले नीचे वाला भाग ढक जायेगा, फिर जैसे जैसे दूरी बढती जायेगी, वैसे वैसे उपर का भाग ढकता

जाएगा। बाद में दूरी और बढ जाने से सिर्फ मस्तूल (टोच) दिखाई देगा और अंत में दूरी बहुत ज्यादा हो जाने पर जहाज पृथ्वी की गोलाई की आड में आ जाने से दिखाई देना बंद हो जाएगा।

पृथ्वी गोल होने के अनेक प्रमाणों में से यह एक ही प्रयोग ऐसा है कि जिसका हम समुद्र किनारे पर जा करके टेलीस्कोप से परीक्षण कर सकते हैं।

उपर दिये गये चित्र में हम देखते हैं कि इनसेट में एक बिन्दू जैसे दिखने वाले जहाज की सिर्फ चिमनी दिखाई देती है जबकि दूरबीन से देखने पर पूरा स्टीमर दिखाई देता है। इसका अर्थ यह है कि पृथ्वी समतल है (एवं हमारी आँख की देखने की निश्चित क्षमता के कारण दूरस्थ जहाज बिन्दु जैसा सिर्फ मस्तूल के रूप में दिखाई देता है) तथा पानी समतल रहता है। पृथ्वी में गोलाई नहीं है अत: पृथ्वी गोल गेन्द जैसी नहीं है। इसका प्रयोग तो एक बालक भी कर सकता है।

B. एफिल टॉवर

वैज्ञानिकों के अंतिम संशोधन अनुसार विश्व एफीलटावर जैसा है। दि. 25-5-04 के इकोनोमिक टाईम्स में रिपोर्ट है कि 27 मार्च को बर्लीन की युनीवर्सिटी यु.एल.एम. के भौतिक शास्त्रियों ने जाहिर किया कि विश्व एफील टावर के समान है। भूगोल-खगोल के अन्य साइन्टिस्टों ने भी इस मत का समर्थन किया है।

विश्व-विख्यात वैज्ञानिक अल्बर्ट आइन्स्टाइन का जन्म जिस शहर में हुआ उसी शहर की युनिवर्सिटी के वैज्ञानिकों ने एक मॉडल प्रस्तुत किया, जो कि विश्व के मूल ढाँचे (आकार) से करीबन मिलता-जुलता है। इसके पूर्व विज्ञान-खगोल-भूगोल द्वारा जो मॉडल बताए गए थे, वे अत्यंत कपटपूर्वक विश्व के समक्ष पेश किये गये थे।

भौतिक विद्वानों की कमिटी के चीफ प्रो. फ्रेन्कस्टेइनर को प्रश्न किया गया कि आपके इस संशोधन के सम्बन्ध में इन्टरनेट का क्या अभिप्राय/आशय है। जवाब में उन्होंने कहा कि हमारे इस संशोधन को सकारात्मक समर्थन मिला है।

पहले जो मॉडल पेश किये गये थे उनमें से फुटबाल जैसे मॉडल के प्रति अनेक भौतिक विदो ने मतभेद प्रगट किये हैं।

c. सुएझ नहर और पृथ्वी की गोलाई

आपको जानकर आश्चर्य होगा कि भूमध्यसागर एवं लाल सागर को जोड़ने वाली 100 मील लम्बी **सुएझ नहर** ब्रिटेन में होते हुए ब्रिटीश इंजीनियरों द्वारा न बनाई जाने पर फ्रेंच इंजीनियरों द्वारा बनाई गयी है। इसके पीछे के कारण गुजरात समाचार दैनिक दि.9.1.1959 में छपे थे जिसका सार नीचे लिखे अनुसार है:

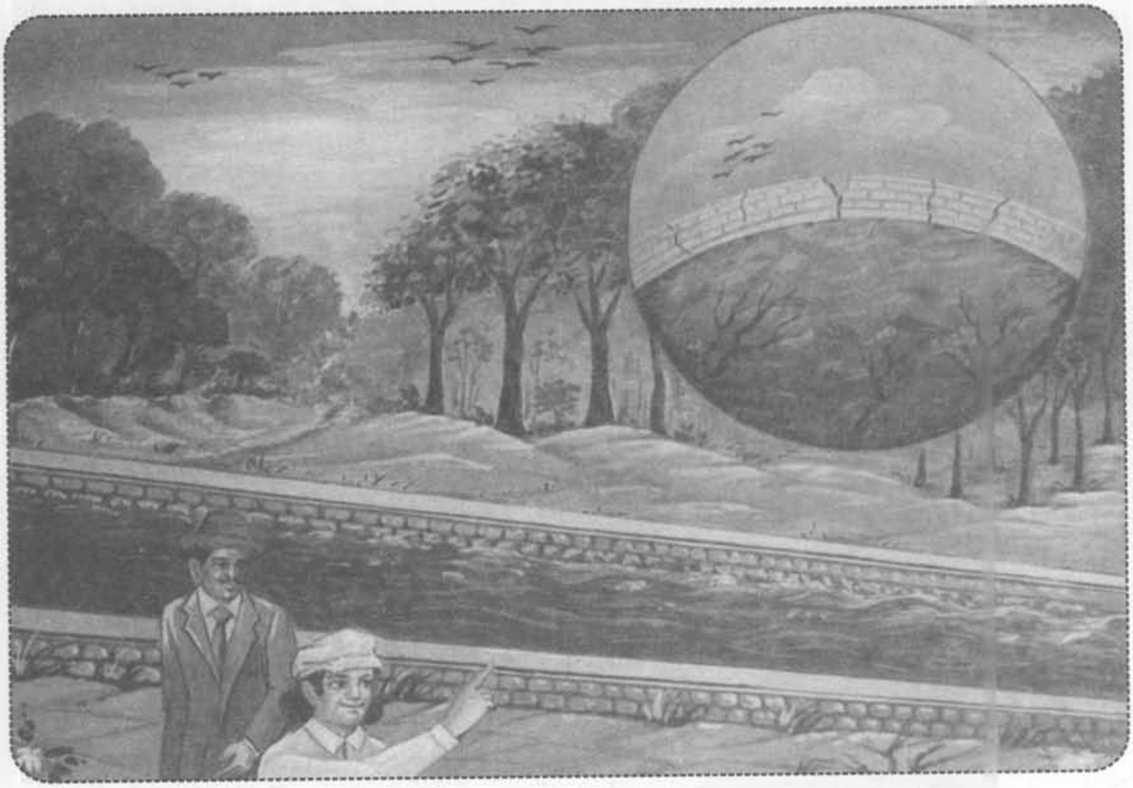

1855 में ब्रिटेन के प्रधानमंत्री लॉर्ड पालमर्स्ट ने अपने देश के प्रमुख सिविल इंजीनियर से पूछा था कि **सुएझ नहर** बनाने का कार्य ब्रिटीश इंजीनियर क्यों नहीं कर रहे हैं? इससे ब्रिटेन की इज़्ज़त कम हो रही है।

ब्रिटेन के चीफ सिविल इंजीनियर ने प्रधानमंत्री के समक्ष स्पष्ट किया कि हमारे इंजीनियरों का मानना है कि फ्रांस के इंजीनियरों की योजना निष्फल जायेगी क्योंकि 100 किलोमीटर की लम्बाई में पृथ्वी की गोलाई 633 फुट होने के कारण नहर के तटबंध में दरारें आ जायेंगी और फ्रांसिसी इंजीनियरों की इज़्ज़त में धब्बा लगेगा। (देखिये इन्सेट में)

परन्तु समस्त जगत जानता है कि सुएझ नहर बनी और हजारों जहाजों का आवागमन हो रहा है। फ्रांस के इंजीनियर द लेसेप्से ने अपने दो साथियों लीनतबे और मुगमबे को स्पष्ट शब्दों में कहा

था कि यह नहर पृथ्वी को गोल नहीं वरन् सपाट मान कर बनानी है। बाद में सन् 1877 में ब्रिटीश पार्लियामेंट ने अपने पूर्व के नियम में संशोधन किया कि 'भविष्य में नहर एवं रेलवे जैसे निर्माण कार्य में ऐसे इंजीनियरों के टेण्डरों पर विचार किया जायेगा, जो पृथ्वी को सपाट मानते है।' यह नियम आज भी लागू है।

ब्रिटेन का यह नियम पृथ्वी के सपाट होने का एक प्रमाण है।

ई. सन् 1873 में ब्रिटेन के वैज्ञानिक डॉ. पेटेलेक्ष ने झेटेटीक एस्ट्रोनोमी नाम की पुस्तक लिखी। बेडफोर्ड नहर के किनारे कॉटेज बनाकर वें 9 महीने तक वहाँ रहे एवं सैंकड़ों प्रयोग किये। सैंकड़ों मील से सीधा देख सके ऐसा नहर में नाव, मस्तूल आदि को दूरबीन एवं अन्य उपकरणों की सहायता से किये गये प्रयोगों के परिणाम अपने जर्नल (पत्रिका) में लिखे हैं। (इसकी प्रतिलिपि अपने पास है)

इन प्रयोगों से इस विद्वान ने प्रमाणित किया कि पृथ्वी की गोलाई का एक ईंच भाग भी इन प्रयोगों मे अवरोधक नहीं बना। पृथ्वी सपाट है तथा घूमती नहीं, वरन् स्थिर है।

आधुनिक भूगोल में इस प्रयोग एवं निर्णय का उल्लेख क्यों नहीं है, यह एक आश्चर्य की बात है।

D. चीन की दीवार क्या कहती है।

यह चीन की दीवार का चित्र है। चीन की दिवार संसार की सबसे लम्बी दीवार है। यह ई.सन् पूर्व 425 अर्थात् आज से लगभग 2500 वर्ष पूर्व बनाई गई है। *Xiogen* तथा *Zhao* (मि.एक्स तथा

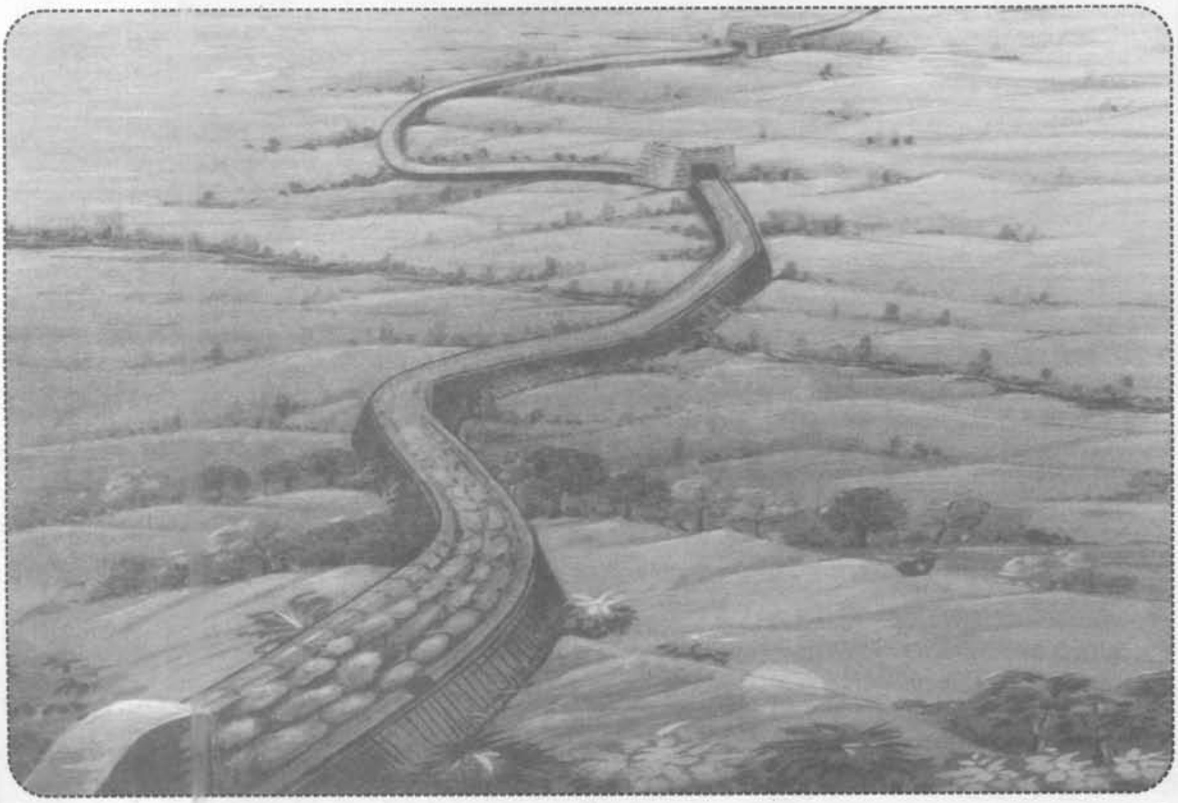

मि.जेड) नामक इंजिनियरों द्वारा 2000 किलोमीटर लम्बी, 23 फुट चौडी तथा 40 फुट उंची यह दीवार उस समय किस प्रकार बनाई गई होगी यह एक आश्चर्य की बात है। आज के इंजिनियर इसकी कल्पना तक नहीं कर सकते। इतनी लम्बी दिवार पृथ्वी को सपाट मान कर बनाई गई है ना कि गोल मानकर । इसी कारण यह बन सकी। यदि ब्रिटीश इंजिनियर की तरह पृथ्वी को गोल मानते तो ये चीन की दीवार कभी भी ना बन पाती!

चीन की यह दीवार पृथ्वी, गोल नहीं है, इस मुद्दे को सत्य ठहराने वाला ठोस प्रमाण है।

E. स्लेज गाड़ी द्वारा विशाल पृथ्वी की यात्रा

दिए गये चित्र को ध्यान से देखें। बर्फ के पहाड़ों के मध्य स्लेज गाड़ी द्वारा यात्रा की जा रही है।

ई. सन् 1938 में कैप्टन जे. रास ने कैप्टन द' फ्रेशियर के साथ दक्षिणी महासागर में दक्षिणी ध्रुव प्रदेश मे 30° अक्षांश पर बर्फ के पहाड़ों पर स्लेज गाड़ी से यात्रा प्रारंभ की।

वहाँ उन्होंने आवश्यक सामान लेकर, अन्य सामग्री छोड़ते हुए 450 से 1000 फुट ऊँची बर्फ की दिवाल पर अपनी यात्रा की। उन्होंने एक ही दिशा में चालीस हजार मील की यात्रा की। चार वर्ष तक लगातार कठिन परिश्रम, नवीन खोज की महत्वाकांक्षा और अत्यधिक कठिनाईयों को सहन करते हुए

यात्रा करने पर भी दिवाल का दूसरा सिरा(अंत) न मिला। अन्ततः दिशा सूचक यंत्र की सहायता से चालीस हजार मील की वापसी यात्रा कर के जहाँ से चले थे वहाँ वापस आये।

आज के भूगोल के अनुसार दक्षिणी ध्रुव प्रदेश में जहाँ से यात्रा प्रारंभ की थी वहाँ पृथ्वी की परिधि 10700 मील होती है। दिशा सूचक यंत्र की सहायता से एक ही दिशा मे 40 हजार मील चले, इससे पृथ्वी की परिधि कितनी अधिक होगी इसका अनुमान लगाया जा सकता है। हमें पढ़ाया जाता है कि पृथ्वी गेंद के समान गोल है अतः एक ही दिशा में चलने पर जहाँ से चले वहीं वापस पहुँचा जा सकता है। इस सिद्धांत के अनुसार तो कैप्टन जे. रास लगभग 4 बार यात्रा के प्रारंभ स्थल पर पहुँच गये होते। किंतु ऐसा न हुआ और उन्हें यात्रा प्रारम्भ स्थल पर वापस आने के लिये पुनः 40 हजार मिल की वापसी यात्रा करनी पड़ी।

कैप्टन जे. रास की दक्षिणी ध्रुव प्रदेश की यात्रा से हमें ज्ञात होता है कि पृथ्वी गोल नहीं है, बहुत विशाल है जहाँ अभी तक कोई नहीं पहुँच सका है। यह एक स्पष्ट प्रयोग है। ऐसे अनेक प्रमाण हैं।

इससे यह सिद्ध होता है कि '' आज जो स्कूलों में पढाया जा रहा है कि पृथ्वी के चारों ओर कई बार प्रदक्षिणा की जा चुकी है। '' यह बात सरासर गलत है।

F. स्टीमरों और वायुयानों को निगलता बरमूडा त्रिकोण

ध्यानपूर्वक उपर के चित्र को देखिये। यह चित्र **बरमूडा त्रिकोण** का है। **बरमूडा त्रिकोण** उत्तरी अमेरिका से लगभग 2400 किलोमीटर दूर एटलांटिक महसागर में है। यह त्रिकोण विश्व के

वैज्ञानिकों के लिए एक सरदर्द है, समस्या है।

18वीं सदी से आज तक इस त्रिकोण ने इसके क्षेत्र में आनेवाले 1000 मनुष्य एवं 100 विमान तथा सैंकड़ों जहाजों को गायब कर दिया है। 541 फुट लम्बे और 13 हजार टन वजनवाली **नोर्झेवरीअर्न्ट स्टीमर** तथा **एवेन्झर** जैसे विशाल विमानों को अपना ग्रास बना चुका है। पुराने जहाजी इस स्थल को भुतिया सागर भी कहते हैं।

इस **बरमूडा त्रिकोण** का रहस्य अभी तक नहीं मिला है। अत्यन्त आधुनेक यंत्रों से सुसज्जित विमानों तथा जहाजो के इस क्षेत्र में पहुंचते ही यंत्र अचानक बन्द हो जाते है एवं सम्पर्क टूट जाता है। इन जहाजों एवं विमानों का कोई भी भाग अथवा तेलों आदि की एक बून्द का पता भी अथक प्रयास के बाद भी नहीं मिला है। यात्रियों की लाशें या सामग्री भी नहीं मिली है। इस पर अमेरिका में बड़ी–बड़ी पुस्तकें छप चुकी हैं। किन्तु विद्वानों अथवा वैज्ञानिकों को अभी तक इस रहस्य का कोई उत्तर नहीं मिला है। इतने आधुनिक वैज्ञानिक साधनों के होते हुए भी इस त्रिकोण का रहस्य, रहस्य ही है।

जबकि अमेरिकन वैज्ञानिक बरमूडा त्रिकोण को भी पार न कर सके, तो पृथ्वी गोल है तथा उसकी चारों ओर प्रदक्षिणा की जा चुकी है। इस बात को कैसे स्वीकार कर सकते हैं? जहाँ कोई अदृश्य शक्ति सबको खींच लेती है। जहाँ जाके कोई वापस ही नहीं आया हो, वहाँ पृथ्वी के आकार संबंधी दिया गया, जजमेन्ट कितना उचित है? ये तो इस बात को पढने वाले खुद ही समझ सकते है।

ऐसे ही दूसरा उदाहरण उत्तरी ध्रुव पर हवाईपट्टी बनाने के लिए निकले वैज्ञानिकों का है। सन् 1954 के मार्च माह के 'धर्मयुग' अंक में उत्तरी ध्रुव प्रदेश में रशियन वैज्ञानिकों द्वारा एरोड्राम स्थापित करने के प्रयत्नों का विवरण छपा था। इसके अनुसार रशियन वैज्ञानिको को रडार पर उत्तरी ध्रुव प्रदेश में 2500 वर्ग मिल के क्षेत्र की जानकारी मिली। रशियन वैज्ञानिकों द्वारा डबल एंजिनवाले विमान में जाकर उस क्षेत्रकी खोज का प्रयत्न किया गया किन्तु बर्फीले वातावरण अथवा चुम्बकीय बलों के कारण इंजन बंद हो जाते थे। इससे वायुयान आगे न जा सके। कई मनुष्यों की मृत्यु हो गई अत: यह कार्य स्थगित करके वैज्ञानिक वापस आगये । सारांश यह है, कि सम्पूर्ण विशाल पृथ्वी पर आज तक कोई वैज्ञानिक नहीं पहुँचे है, और न पहुँच सकेंगे।

15. सूत्र एवं विधि

A. सूत्र

1) वंदित्तु, 2) पौषध लेने का सूत्र, 3) पौषध पारने का सूत्र, 4) संथारा पोरिसी

B. अर्थ

1) नवकार से अब्भुट्ठिओं सूत्र

C. विधि

1) पौषध लेने की विधि 2) पौषध पारने की विधि

D. पच्चक्खाण

नवकारसी-पोरिसी-साड्ढपोरिसी-पुरिमड्ढ-अवड्ढ-मुट्ठिसहिअं-विगइओ-निवी-आयंबिल-एकासणा-बिआसणा-देशावगासिक-धारणा

उग्गए सूरे, नमुक्कारसहिअं पोरिसिं, साड्ढपोरिसिं, सूरे उग्गअे पुरिमड्ढं अवड्ढं मुट्ठिसहिअं पच्चक्खाइ, उग्गअे सूरे चउव्विहंपि आहारं, असणं, पाणं, खाइमं, साइमं, अन्नत्थणा भोगेणं, सहसागारेणं, पच्छन्नकालेणं दिसामोहेणं, साहूवयणेणं, महत्तरागारेणं, सव्वसमाहिवत्तियागारेणं विगईओ निव्विगइअ, आयंबिलं पच्चक्खाइ, अन्नत्थणाभोगेणं, सहसागारेणं, लेवा लेवेणं, गिहत्थसंसट्ठेणं, उक्खितविवेगेणं, पडुच्चमक्खिएणं, पारिट्ठावणियागारेणं, महत्तरागारेणं, सव्वसमाहिवत्तियागारेणं। एगासणं बिआसणं पच्चक्खाई, तिविहंपि आहारं, असणं खाइमं, साइमं, अन्नत्थणाभोगेणं, सहसागारेणं, सागारियागारेणं, आउंटणपसारेणं, गुरुअब्भुट्ठाणेणं, पारिट्ठावणियागारेणं महतरागारेणं, सव्वसमाहिवत्तियागारेणं, पाणस्स लेवेणवा, अलेवेणवा, अच्छेण वा, बहुलेवेणवा, ससित्थेण वा, असित्थेणवा, देसावगासिअं उवभोगं, परिभोगं, पच्चक्खाई, धारणा अभिग्रह पच्चक्खाई, अन्नत्थणाभोगेणं, सहसागारेणं, महत्तरागारेणं सव्वसमाहिवत्तियागारेणं वोसिरइ॥

16. कहानी

A. श्री भरत और बाहुबलि

भगवान आदिनाथ की दो पत्नियाँ : सुमंगला और सुनंदा

सुमंगला और ऋषभ युगलिये रूप में साथ-साथ जन्मे थे ।

सुनंदा के साथी युगलिये की ताड वृक्ष के नीचे सिर पर फल गिरने से मृत्यु हो गई थी । युगलिये में दो में से एक की अकाल मृत्यु हो ऐसा यह प्रथम किस्सा था ।

सौधर्मेन्द्र इन्द्र ने ऋषभदेव के पास जाकर कहा,'आप सुमंगला तथा सुनंदा से ब्याह करने योग्य हो, हालांकि आप गर्भावस्था से ही वितराग हो लेकिन मोक्षमार्ग की तरह व्यवहारमार्ग भी आपसे ही प्रकट होगा ।' यह सुनकर अवधिज्ञान से ऋषभदेव ने जाना कि उन्हें 83 लाख पूर्व तक भोगकर्म भोगना है । सिर हिलाकर इन्द्र को अनुमति दी और सुनंदा और सुमंगला से ऋषभदेव का विवाह हुआ ।

समयानुसार ऋषभदेव को सुमंगला से भरत और ब्राह्मी नामक पुत्र-पुत्री जन्में एवं सुनंदा से बाहुबलि और सुन्दरी का जन्म हुआ । उपरांत, सुमंगला से अन्य 49 जुड़वे ज़न्मे ।

समय बीतते ऋषभदेव ने प्रवज्या ग्रहण करने का निश्चय किया । भरत सबसे बड़ा होने के कारण उसे राज्य ग्रहण करने को कहा गया एवं बाहुबलि वगैरह को योग्यतानुसार थोड़े देश बाँट दिये और चारित्र ग्रहण किया ।

अलग-अलग देशों पर भरत महाराज ने अपनी आन बढ़ाकर चक्रवर्ती बनने के सर्व प्रयत्न किये । अन्य अठ्ठानवें भाई भरत की आन का स्वीकार करना या नहीं, इसका निर्णय न कर सकने के कारण भगवान श्री आदिनाथ से राय लेने गये । भगवान ने उन्हें बोध दिया, सच्चे दुश्मन मोह-मान, माया, क्रोध वगैरह के साथ लड़ो याने चारित्र ग्रहण करो । चक्ररत्न अलग-अलग देशों में घूमकर विजयी बनकर लौटा लेकिन चक्ररत्न ने आयुधशाला में प्रवेश न किया । राजा भरत द्वारा कारण पूछने पर मंत्रीश्वर ने कहा,'आपके भाई बाहुबलि अभी आपके अधीन नहीं है । वे आपकी शरण में आवे तो ही आप चक्रवर्ती कहे जाओगे और चक्ररत्न आयुधशाला में प्रवेश करेगा ।'

भरतेश्वर ने अपना दूत बाहुबलिजी के पास तक्षशिला भेजा । तक्षशिला का राज्य बाहुबलिजी भोग रहे थे । दूत ने आकर बाहुबलिजी को भरतेश्वर की शरणागति लेने को समझाया, जिससे भरत महाराज सच्चे अर्थ में चक्रवर्ती बन सके । लेकिन बाहुबलि ने भरतजी का स्वामीत्व स्वीकार करने का साफ इन्कार कर दिया । भरत और बाहुबलि दोनों युद्ध पर उतर आये । युद्ध 12 साल लम्बा चला । खून की नदियाँ बहने लगी । दोनों में से किसीकी भी हार जीत न हुई ।

यह हिंसक लड़ाइ अधिक न चले इसलिये सुधर्मेन्द्र देव ने दोनों भाईयों को आमने-सामने लड़ने को समझाया । दोनों भाई आमने-सामने लड़ने तत्पर हुए । पांच प्रकार के युद्ध में बाहुबली जीत गये। तब

भरत ने चक्र चलाया। समान गोत्र वाले होने से वह चक्र फिर से लौट गया। बाद में भरतेश्वर ने बाहुबलि के सिर पर जोर से मुष्टि प्रहार किया । बाहुबलि घुटनों तक जमीन में धंस गये । बाहुबलिजी की बारी आयी । हुंकार कर उन्होंने मुष्टि तानी । लेकिन विचार किया कि यदि मुष्टिप्रहार करूंगा तो भरत मर जायेगा। मुझे तो भ्रातृहत्या का पाप लगेगा । अब तानी हुई मुट्ठी भी बेकार तो न जानी चाहिये, ऐसा सोचकर बाहुबलिजी ने उस मुट्ठी से उसी समय अपने सिर के बालों का लोच कर डाला और वहीं पर चारित्र भी ग्रहण कर लिया ।

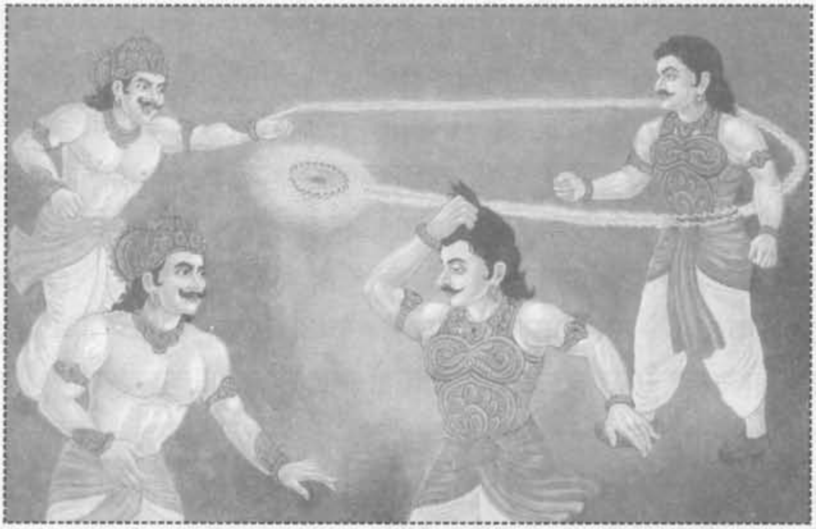

भरतेश्वर को बड़ा दु:ख हुआ । संयम न लेने के लिए उन्हें बहुत समझाया लेकिन बाहुबलिजी चारित्र ग्रहण के लिए अटल रहे । और भगवान द्वारा कहे गये पाँच महाव्रत भी धारण किये । उस समय उन्होंने भगवान को वंदन करने जाने का सोचा, लेकिन इस समय भगवान के पास जाऊँगा तो मुझे प्रथम अट्ठानवें छोटे भाइयों को वंदन करने पड़ेंगे, वे उम्र में छोटे हैं, उनको क्यों नमस्कार करूँ ? ऐसा सोचकर वहीं उन्होंने कायोत्सर्ग किया और तपस्या करके केवलज्ञान प्राप्त करने के बाद ही भगवान के पास जाने का मन में ठान लिया ।

बाहुबलिजी ने एक वर्ष तक उग्र तपस्या की । शरीर पर सैंकड़ों शाखाओंवाली लताएँ लिपट गई थी । पक्षियों ने घोंसले बना लिये थे । भगवान श्री ऋषभदेव ने ब्राह्मी एवं सुन्दरी को बुलाकर बाहुबलिजी के पास जाने को कहा और बताया कि मोहनीय कर्म के अंश रूप मान (अभिमान) के कारण उन्हें केवलज्ञान प्राप्त नहीं हो रहा है । बाहुबलि जहाँ तप कर रहे थे वहाँ आकर ब्राह्मी एवं सुन्दरी उपदेश देने लगी और कहा, 'हे वीर ! भगवान (जो हमारे पिताजी है) ने कहलाया है कि हाथी पर बैठे हुए को केवलज्ञान होता नहीं है ।' यह सुनकर बाहुबलिजी सोचने लगे, 'मैं कहाँ हाथी पर बैठा हुआ हूँ ? लेकिन दोनों बहिनें भगवान की शिष्या हैं, वे असत्य नहीं बोल सकतीं ।' ऐसा सोचते ही उन्हें समझ आयी कि उम्र में मुझसे छोटे लेकिन व्रतों में बड़े भाइयों को मैं क्यों नमस्कार करूं – ऐसा जो अभिमान मुझमें है – उसी हाथी पर मैं बैठा हूँ । यह विनय मुझे प्राप्त नहीं हुआ, वे कनिष्ट हैं ऐसा सोचकर उनकी वंदना की चाह मुझे न हुई । इसी समय मैं वहाँ जाकर उन महात्माओं को वंदन करूंगा। ऐसा सोचकर बाहुबलि ने कदम उठाया । और उनके सब घाती कर्म टूट गये । उसी समय महात्मा को केवलज्ञान प्राप्त हुआ ।

भरत महाराजा एक दिन स्नान करके, शरीर पर चंदन का लेप लगाकर सर्व अंगों पर दिव्य रत्न आभूषण धारण करके अंत:पुर के आदर्शगृह में गये । वहाँ दर्पण में अपना स्वरूप निहार रहे थे तब एक अंगूलि से मुद्रिका गिर गई । उस अंगूलि पर नजर पड़ते वह कांतिविहीन लगी । उन्होंने सोचा कि यह अंगूलि शोभारहित क्यों है ? यदि अन्य आभूषण न हो तो और अंग भी शोभारहित लगेंगे ? ऐसा सोचते-सोचते एक-एक आभूषण उतारने लगे। सब आभूषण उतर जाने के बाद शरीर पत्ते बगैर के पेड़ समान लगा । शरीर मल और मूत्रादिक से मलिन है । उसके ऊपर कपूर एवं कस्तूरी वगैरह विलेपन भी उसे दूषित करते हैं – ऐसा सम्यक् प्रकार से सोचते-सोचते क्षपकश्रेणी में आरूढ़ होकर शुक्लध्यान में लीन होते ही उनके सर्व घाति कर्म का क्षय हो गया एवं वे भी केवली बन गये ।

B. रोहिणीया चोर

राजगृही नगरी के नजदीक वैभारगिरि गुफा में लोहखुर नामक भयंकर चोर रहता था । लोगों पर पिशाच की तरह उपद्रव करता था । नगर के धन भंडार और महल लूटता था । लंपट होने के कारण परस्त्री का उपभोग भी करता था । रोहिणी नामक स्त्री से उसे रोहिणेय नामक पुत्र हुआ । वह भी पिता की तरह भयंकर था । मृत्यु-समय नजदीक आता देखकर लोहखुर ने रोहिणेय को बुलाकर कहा,'तू मेरा एक उपदेश सुन और उस ढंग से आचरण जरूर करना ।' रोहिणेय ने कहा,'मुझे जरूर आपके वचन अनुसार चलना ही चाहिये । पुत्र का वचन सुनकर लोहखुर हर्षित होकर कहने लगा,'जो देवता के रचे हुए समवसरण में बैठकर महावीर नामक योगी देशना दे रहे हैं, वह प्रवचन तूं कभी भी सुनना मत।' ऐसा उपदेश देने के बाद लोहखुर की मृत्यु हो गई ।

शूल निकालते समय रोहिणेय चोर को भगवान महावीर की वाणी सुनाई दी ।

कई बार रोहिणीया समवसरण के निकट से गुजरता था । क्योंकि राजगृही जाने का दूसरा मार्ग भी न था । वहाँ से गुजरते समय दोनों कान में अंगुलियां डालकर वहाँ से गुजर जाता जिससे महावीर की वाणी सुनाई न दे और पिता की आज्ञा का भंग भी न हो । एक बार समवसरण से गुजरते हुए पैर में एक कांटा चुभा । कांटा निकाले बिना आगे बढ़ना असंभव था । न चाहते हुए कान से अंगुलि निकालकर काँटा पाँव से बाहर निकाल डाला । लेकिन उस समय दौरान भगवान की वाणी निम्न अनुसार उसे सुनाई दी । 'जिसके चरण पृथ्वी को छूते नहीं है, नेत्र निमेषरहित होते हैं, पुष्पमालाएँ सूखती नहीं है व शरीर धूल तथा प्रस्वेद रहित होता है वे देवता कहलाते हैं ।' इतना सुनते ही वह सोचने लगा,'मुझे बहुत कुछ सुनाई दिया। धिक्कार है मुझे । मेरे पिता ने मृत्यु समय दी हुई आज्ञा का मैं

पालन न कर सका ।' जल्दी से कान पर हाथ रखकर वह वहाँ से चल दिया ।

दिन ब दिन उसका उपद्रव बढ़ता गया । गाँव के नागरिकों ने इस चोर के उपद्रव से बचाने की विनती राजा श्रेणिक को की । राजा ने कोतवाल को बुलाकर चोर पकड़ने के लिए खास हुक्म दिया, लेकिन कोतवाल कड़ी मेहनत के बाद भी रोहिणेय को न पकड़ सका । राजा ने अपनी पुरी कोशिश की, आखिर अभयकुमार को चोर पकड़ने का कार्य सौंपा । अभयकुमार ने कोतवाल को कहा कि संपूर्ण सेना गाँव के बाहर रखो । जब चोर गाँव में घूसे तब चारों ओर सेना को घूमती रखो । इस प्रकार की योजना से रोहिणीया मछली की तरह जाल में फँस कर एक दिन पकड़ा गया ।

लेकिन महाउस्ताद चोर ने किसी भी प्रकार से खुद चोर है ऐसा स्वीकार न किया और कहा,'मैं शालिग्राम में रहनेवाला दुर्गचंद नामक पटेल हूँ ।' उसके पास चोरी का कोई माल उस समय न था । सबूत के बिना गुनाह कैसे माना जाय? और सजा भी कैसे दी जाय? शालिग्राम में पूछताछ करने पर दुर्गचंद नामक पटेल तो था लेकिन लम्बे समय से वह कहीं पर चला गया है, ऐसा पता चला । अभयकुमार ने चोरी कबूलवाने के लिए एक युक्ति आजमायी । उसने देवता के विमान की तरह महल में स्वर्ग जैसा नजारा खड़ा किया । चोर को मद्यपान करा कर बेहोश किया, कीमती कपड़े पहनाये । रत्नजड़ित पलंग पर सुलाया और गंधर्व जैसे कपड़े पहनाकर दास-दासियों को सब कुछ सिखा कर सेवा में रखा । चोर का नशा उतरा । वह जागा तब इन्द्रपुरी जैसा नजारा देखकर आश्चर्य चकित हो गया । अभयकुमार की सूचना अनुसार दास-दासी,'आनंद हो-आपकी जय हो' जयघोष करने लगे और कहा,'हे भद्र ! आप इस विमान के देवता बन गये हों । आप हमारे स्वामी हो । अप्सराओं के साथ इन्द्र की तरह क्रीड़ा करो ।' इस तरह चतुराई पूर्वक बड़ी चापलूसी की । चोर ने सोचा, वाकई मैं देवता बन गया हूँ ?

गंधर्व जैसे अन्य सेवक संगीत सुनवा रहे थे । स्वर्ण छड़ी लेकर एक पुरुष अन्दर आया और कहने लगा,' ठहरो ! देवलोक के भोग भुगतने से पहले नये देवता अपने सुकृत्य और दुष्कृत्य बताये - ऐसा एक नियम है । तो आपके पूर्व भव के सुकृत्य वगैरह बताने की कृपा करे।' रोहिणेय ने सोचा, वाकई यह देवलोक है? ये सब देव-देवियाँ हैं या कबूलवाने के लिए अभयकुमार का कोई प्रपंच है?

सोचते - सोचते उसे प्रभु महावीर की वाणी याद आई । उन लोगों के पाँव जमीन पर हैं । फूलों की मालाएँ मुरझाई हुई हैं और पसीना भी खूब छूटता है, आँखें भी पलकें झपकाती हैं, अनिमेष नहीं है इसलिये यह सब माया है । मन में ऐसा तय किया कि ये देवता नहीं हो सकते । इसलिये झूठा उत्तर दिया,'मैंने पूर्व भव में जैन चैत्यों का निर्माण करवाया है, प्रभु पूजा अष्टप्रकार से की है ।' दण्डधारी ने पूछा,' अब आपके दुष्कृत्यों का वर्णन कीजिये ।' चोर ने कहा,'मैंने कोई दुष्कृत्य किया ही नहीं है । यदि मैंने दुष्कृत्य किया होता तो देवलोक में आता कैसे ?' इस प्रकार युक्तिपूर्वक उत्तर दिया । अभयकुमार की योजना नाकाम रही । रोहिणेय को छोड़ देना पड़ा ।

छुटकारा होते ही वह सोचने लगा, पल दो पल की प्रभु वाणी बड़े काम आई । उनकी वाणी अधिक सुनी होती तो कितना सुख मिलता? मेरे पिता ने गलत उपदेश देकर मुझे संसार में भटकाया है । यों

पश्चाताप करते हुए प्रभु के पास आकर चरणों में गिरकर वंदना की और कहा, मेरे पिता ने आपके वचनों को सुनने का निषेध करके मुझे ठगा है, कृपा करके मुझे संसार सागर से बचाओ । मैं आपके अल्प वचनों को सुनकर राजा के मृत्युदण्ड से बचा हूँ । अब उपकार करके, योग्य लगे तो मुझे चारित्र ग्रहण करवाईये । प्रभु ने व्रत देने की हाँ कह दी । किये हुए पापों की क्षमायाचना हेतु चोर ने श्रेणिक महाराजा के पास जाकर चोरी वगैरह का इकरार किया और अभयकुमार को संग्रहित चोरी के माल का पता दिया । और प्रभु से दीक्षा ग्रहण की । क्रमानुसार एक उपवास से लेकर छःमासी उपवास की उग्र तपश्चर्या करने के बाद वैभार पर्वत पर जाकर अनशन किया । शुभ ध्यानपूर्वक पंच परमेष्ठी का स्मरण करते हुए देह छोड़कर स्वर्ग पधारे ।

C. श्री नयसार

जंबूद्वीप में जयंती नामक नगरी थी । वहाँ शत्रुमर्दन नामक राजा राज्य करते थे । उसके पृथ्वी प्रतिष्ठान नामक गाँव में नयसार नामक स्वामी भक्त मुखिया थे । उनका किसी कोई साधु–महात्माओं के साथ सम्पर्क न था । लेकिन वह अपकृत्यों से पराङमुख दूसरों के दोष देखने से विमुख और गुण ग्रहण में तत्पर रहता था ।

एक बार राजा की आज्ञा से लकड़े लेने वह खाना लेकर जंगल में गया । वृक्ष काटते हुए मध्यान्ह का समय हुआ और खूब भूख भी लगी । उस समय नयसार के साथ आये अन्य सेवकों ने उत्तम भोजन सामग्री परोसी, नयसार को भोजन के लिये बुलाया । स्वयं क्षुधातृषा से आतुर था लेकिन 'कोई अतिथि आये तो उसे भोजन कराने के बाद भोजन करूँ' – ऐसा सोचकर आसपास देखने लगा । इतने में क्षुधातुर, तृषातुर और पसीने से जिनके अंग तरबतर हो गये थे ऐसे कुछ मुनि उस तरफ आ पहुँचे । 'अहा ! ये मुनि मेरे अतिथि बनें, बहुत अच्छा हुआ ।' ऐसा चिंतन करते हुए नयसार ने उनको नमस्कार करके पूछा, 'हे भगवंत ! ऐसे बड़े जंगल में आप कहाँ से आ गये । कोई शस्त्रधारी भी इस जंगल में अकेले घूम नहीं सकता ।' मुनियों ने कहा: 'प्रारंभ से हम हमारे स्थान से सार्थ के साथ चले थे । मार्ग में हम एक गाँव में भिक्षा लेने गये और सार्थ चल पड़ा । हमें कुछ भिक्षा भी न मिली । हम सार्थ को ढूंढते हुए आगे ही आगे

बढ़ते गये । लेकिन हमें सार्थ तो मिला नहीं और इस घोर बन में पहुँच गये ।' नयसार ने कहा, 'अरे रे ! यह सार्थ कैसा निर्दयी ! कैसा विश्वासघाती! उसकी आशा पर साथ चले साधुओं को साथ लिये बिना स्वार्थ में निष्ठुर बनकर चल दिया । यह मेरा पुण्य है कि आप अतिथि के रूप में यहाँ पधारें हैं, यह अच्छा ही हुआ है ।' इस प्रकार कहकर नयसार अपने साथ मुनि को भोजन स्थान पर ले गया और अपने लिये तैयार किये गये अन्न-पानी को मुनियों को वोहराया । मुनियों ने अलग जाकर अपने विधि अनुसार आहार ग्रहण किया । भोजन करके नयसार मुनियों के पास पधारे और प्रणाम करके कहा, 'हे भगवंत ! चलिये मैं आपको नगर का मार्ग बता दूं ।' मुनि नयसार के साथ चले और नगरी के मार्ग पर पहुँच गये । वहाँ मुनियों ने एक वृक्ष के नीचे बैठकर नयसार को धर्मोपदेश दिया । सुनकर अपनी आत्मा को धन्य मानते हुए नयसार ने उसी समय समकित प्राप्त किया एवं मुनियों को वंदना करके वापिस लौटा और सर्व काटे हुए काष्ट राजा को पहुँचाकर अपने गाँव आया ।

तत्पश्चात् यह दरियादिल नयसार धर्म का अभ्यास करते, तत्त्व चिंतन और समकित पालते हुए जीवन यापना करने लगे । इस प्रकार आराधना करते हुए नयसार अंत समय पर पंच नमस्कार मंत्र का स्मरण करके, मृत्यु पाकर सौधर्म देवलोक में पल्योपम आयुष्यवाला देवता बना । उन्हीं की आत्मा सत्ताईसवें भव में त्रिशला रानी की कोख से जन्म लेकर चोबीसवें तीर्थंकर श्री महावीर स्वामी बनी ।

D. श्री इलाचीकुमार

इलावर्धन नामक नगर में जितशत्रु नामक राजा राज्य करता था । उस गाँव में इभ्य नामक सेठ व धारिणी नामक उसकी सद्गुणी स्त्री रहते थे । वे सर्व प्रकार से सुखी थे लेकिन संतान न होने का एक दुःख था । इस दम्पती ने अधिष्ठायिका इलादेवी की आराधना करते हुए कहा कि, 'यदि पुत्र होगा तो उसका नाम तेरे नाम पर ही रखेंगे ।' कालक्रम से उन्हें पुत्र हुआ और मनौती अनुसार उसका नाम इलाचीकुमार रखा।

आठ वर्ष का होते ही इलाचीकुमार को पढ़ने के लिये अध्यापक के पास भेजा गया । उसने शास्त्रों का सूत्रार्थ सहित अध्ययन किया । युवा अवस्था आई लेकिन युवा स्त्रीयों से वह जरा-सा भी मोहित न हुआ । घर में साधू की तरह आचरण करता रहा। पिता ने सोचा, 'यह पुत्र धर्म, अर्थ और काम तीनों में प्रवीणता नहीं पायेगा तो उसका क्या होगा? उसे व्यसनी लोगों की टोली में रक्खा, जिससे वह जैन कुल के आचार विचार न पालकर धीरे-धीरे दुराचारी बनता गया ।

इतने में वसंत ऋतु आयी । इलाचीपुत्र अपने कुछ साथियों के साथ फल-फूल से सुशोभित ऐसे उपवन में गये, जहाँ आम्र, जामून वगैरह फल तथा सुगंधित फूलों के वृक्ष थे । वहाँ लंखीकार नामक नट की पुत्री को उसने नृत्य करते हुए देखा । उसे अपनाने की इच्छा हुई । यह इच्छा बार-बार होने लगी और वह दिग्मूढ होकर पूतले की भाँति खड़ा रह गया । मित्र इलाचीकुमार के मनोविकार को समझ गये और उसे समझाकर घर ले गये । घर जाने के बाद वह रात्रि को सोया लेकिन लेशमात्र निद्रा न आई, क्योंकि

नटपुत्री को वह भुला न सका था । ऐसी स्थिति देखकर उसके पिता ने पूछा, 'हे पुत्र ! तेरा मन क्यों व्यग्र है ? किसी ने तेरा अपराध किया है ।' इलाचीकुमार ने जवाब दिया, 'पिताजी! मैं सन्मार्ग प्रवर्तनादि सब कुछ समझता हूँ, पर लाचार हूँ । मेरा मन नटपुत्री में ही लगा हुआ है ।' पिताजी समझ गये कि 'मैंने ही भूल की थी । उसे कुसंगति में छोड़ा जिसका फल भुगतने की बारी आई । अब मैं निषेध करके उसको रोकूंगा तो वह मृत्यु पायेगा, तो मेरी क्या गति होगी । भला-बुरा सोचकर वह उस नट से मिले और अपने पुत्र के लिए उसकी पुत्री की माँग की । नट बोला, 'अच्छा ! यदि आपके पुत्र की ऐसी ही इच्छा हो तो उसे हमारे पास भेजो ।'

कोई और मार्ग न होने से पिता ने इलाचीपुत्र को नटपुत्री के साथ ब्याह करने की स्वीकृति देकर पुत्र को नट के पास भेजा । नट ने इलाचीपुत्र को कहा, 'यदि नट पुत्री से ब्याह करना हो तो हमारी नृत्यकला सीख । उसमें प्रवीणता मिलने पर यह कन्या तुझको दूँगा ।'

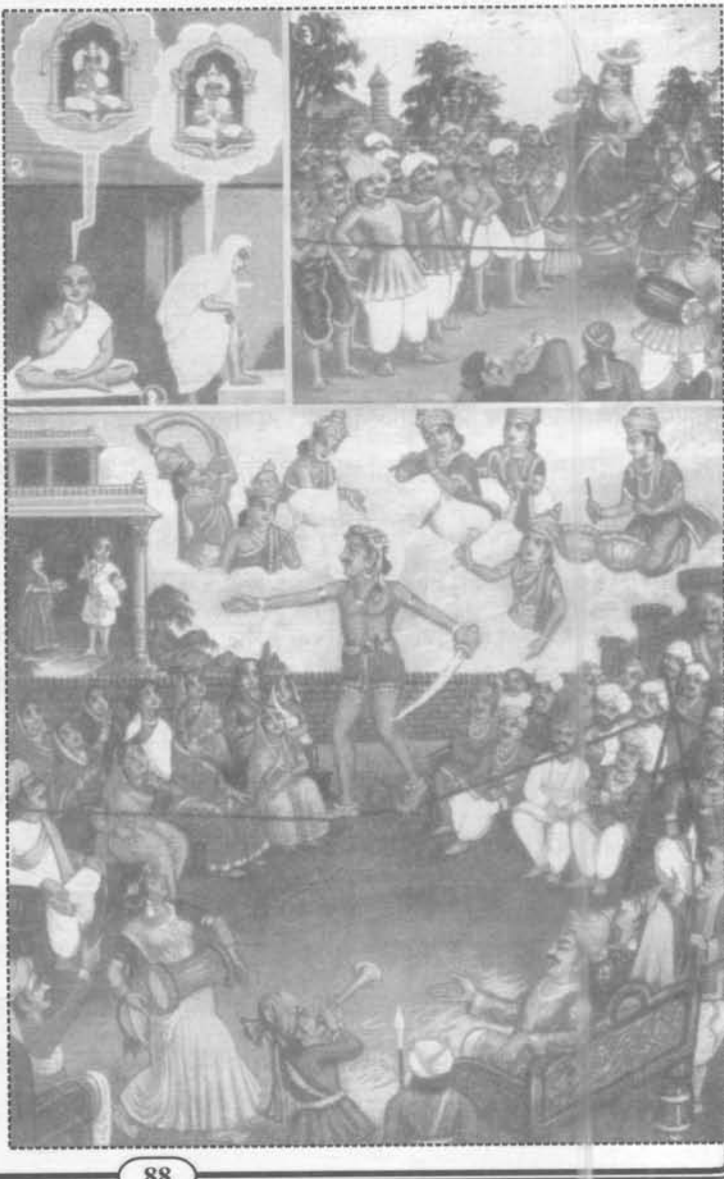

कामार्थी इलाचीकुमार नृत्यकला सीखने लगा । अल्प समय में ही वह नृत्यकला में माहिर हो गया । लंखीकार इलाचीकुमार और अपनी पुत्री को नचाते हुए द्रव्य उपार्जित करने लगा। खूब द्रव्य उपार्जन के बाद महोत्सवपूर्वक पुत्री का ब्याह करने की लंखीकार ने शर्त रखी।

बड़े पैमाने पर द्रव्य उपार्जन करना हो तो कोई बड़े राज्य में जाकर राजा-महाराजा को नृत्य से खुश करना चाहिये - ऐसे ख्याल से लंखीकार इलाचीकुमार तथा उसकी पूरी मण्डली को लेकर बेनातट नगर को गये । वहाँ इलाचीकुमार ने राजा महीपाल को कहा, 'हमें आपको एक नाटक बताना है।' राजा ने हाँ कह दी । उसने विनय सहित नाट्य और नृत्य के प्रयोग शुरू किये । बांस की दो घोड़ी बनायी । दोनों के बीच एक रस्सी

बाँधकर वह रस्से पर नृत्य करने लगा।

उस समय राजा की नजर लंखीकार की पुत्री पर पड़ी और वह उस पर मोहित हुआ । उसे कैसे पाया जाय? उसने सोचा कि वह नट रस्से पर से गिर जाय और मर जाय तो नटनी को पा सकेगा । इस कारण दुबारा रस्से पर नाच करने को कहा । इलाचीकुमार ने दुबारा रस्से पर जाकर उत्कृष्ट नृत्य किया लेकिन राजा खुश न हुआ । उसने फिर से निराधार रस्से पर नृत्य करने को कहा । इस बार राजा के भाव ऐसे थे कि नटकार रस्से पर से संतुलन गँवा दे और गिरकर मर जाये और नटीनी को प्राप्त कर सके । इलाचीकुमार के भाव ऐसे थे कि राजा कैसे खुश होकर बड़ा इनाम दें और नटनी के साथ ब्याह करूं । दोनों के भाव भिन्न-भिन्न थे । इस प्रकार राजा बार-बार नृत्य करने को कहते थे । इलाचीकुमार समझ गया कि राजा की भावना बुरी है । वह मेरी मृत्यु चाह रहा है । इस पार इलाचीकुमार ने दूर एक दृश्य देखा। एक सुंदर स्त्री साधू महाराज को भिक्षा दे रही थी, साधू रंभा जैसी स्त्री के सामने देखते भी नहीं हैं।'धन्य हैं ऐसे साधू को ! वह कहाँ और मैं कहाँ ? माता-पिता की बात न मानी और एक नटनी पर मोहित होकर मैंने कुल को कलंकित किया ।' ऐसा सोचते-सोचते चित्त वैराग्यवासित हुआ । रस्से पर नाचता इलाचीकुमार अनित्य भावना का चिंतन करने लगा और उसके कर्मसमूह का भेदन हुआ, जिससे उसने केवलज्ञान पाया और देवताओं ने आकर स्वर्णकमल रचा । उस पर बैठकर इलाचीकुमार ने राजा सहित सबको धर्म देशना दी । राजा के पूछने पर अपने पूर्वभव की बात कही । जाति के घमण्ड के कारण पूर्व भव की उसकी स्त्री मोहिनी लंखीकार की पुत्री बनी और पूर्वभव के स्नेहवश स्वयं इस नटपुत्री पर मोहित हुआ था । राजा को भी सभी कथानक सुनकर वैराग्य वश केवलज्ञान प्राप्त हुआ।

E. चंद्रा और सगर ने क्रोध की आलोचन न ली...

वर्धमान नगर में सुघड़ नाम का कुलपुत्र था । उसकी चन्द्रा नाम की पत्नी थी । उसे सगर नाम का पुत्र था । घर में दरिद्रता होने से दोनों मजदूरी कर जीवन चलाते थे । युवावस्था में ही सुघड़ की मृत्यु हो गई । एक दिन चन्द्रा किसी के घर के काम करने बाहर गई हुई थी । वहां कामकाज ज्यादा होने से आने में देरी हो गई इतने में उसका पुत्र जंगल से लकड़ी का गट्ठर लेकर आया । चारों ओर देखने पर भी भोजन दिखाई नहीं दिया । जिससे वह अत्याकुल हो गया । इतने में काम पूर्ण करके भूख और प्यास से व्याकुल चन्द्रा आ रही थी । तब क्रोध से धधकते हुए सगर ने कहा कि-''क्या तू कही शूली पर चढ़ने गई थी? इतनी देर कहाँ लगी?'' इतने कठोर और तिरस्कार पूर्ण शब्दों को सुनकर चंद्रा क्रोध से लाल-पीली होकर बोली- ' क्या तेरी कलाई कट गई थी कि जिसके कारण तुझे सीके पर से भोजन लेने में जोर पड़ता था?'' इस प्रकार के क्रोधमय वचनों को बोलकर, आलोचना नहीं ली। शास्त्र में कहा हैं कि- ''ते पुण मूढतणअे कत्थवि नालोइय कहवि'' मूढ़ता के कारण उन्होंले आलोचना नहीं ली। काल करके अनुक्रम से सर्ग का जीव ताम्रलिप्त नगर में अरुणदेव नाम का श्रेष्ठीपुत्र बना और चन्द्रा का जीव पाटलीपुत्र में जसादित्य के यहां पुत्री के रूप में जन्म पाया। उसका नाम देवणी रखा गया। यौवन वय में योगानुयोग अरूणदेव और

देवणी की परस्पर शादी हो गयी। कैसी विचित्र स्थिति है कर्म की? एक बार माता और पुत्र का संबंध था, अब वह मिटकर पति–पत्नि का संबंध हो गया।

एक दिन अरूणदेव मित्र के साथ समुद्रपथ से जहाज में रवाना हुआ । परन्तु अशुभ कर्म के योग से जहाज टूट गया । सद्भाग्य से दोनों को एक लकड़ी का तख्ता मिल गया । उसके सहारे तैरते–तैरते वे दोनों किनारे पर आ गये । वहां से आगे चल कर पाटलीपुत्र नगर के पास पहुंचे ।

मित्र ने कहा– अरूणदेव! तेरा ससुराल इस गाँव में हैं । हम हैरान–परेशान हो चुके हैं । चलो हम तुम्हारे ससुर के घर चलें । अरूणदेव रे कहा–इस दरिद्रावस्था में मैं वहां कैसे जाऊं? मित्र ने कहा– कि तू यहां बैठ । मैं वहां जाकर आ जाता हूं । मित्र गाँव में गया । अरूणदेव एक देव मन्दिर में निद्राधीन हो गया। समुद्र में तैरने के कारण थकावट से शीघ्र ही खरटि भरने लगा । इतने में देवणी अलंकृत होकर उपवन में आयी । वहां किसी चोर ने तलवार से उसकी कलाई काट कर कंकण ले लिए और भाग गया । देवणी ने शोरगुल मचाया । सिपाही चोर के पीछे लग गये । छिपने या भागने की जगह न होने के कारण चोर देव–मंदिर में घुस गया और अरूणदेव के पास रक्तरंजित तलवार और कंकण रखकर भाग गया । पीछा करने वाले सिपाही अरूणदेव के पास आए और चारी का माल उसके पास देखकर, उसे पकड़ा और मारा । बाद मे सिपाही उसे राजा के पास ले गए । इस प्रकार दिन दहाड़े कलाई काटने वाला जानकर राजा ने अरूणदेव को शूली पर चढ़ाने का आदेश दे दिया । जल्लादों ने उसे शूली पर चढ़ा दिया ।

इधर मित्र भोजन आदि लेकर आया । पूछ–ताछ करने पर मालूम हुआ कि अरूणदेव को तो शूली पर चढ़ा दिया गया है । जसादित्य को इस बात का पता चलने पर वह भी वहाँ पर आया और अपने दामाद को इस प्रकार शूली पर चढ़ाया गया है । यह सर्व वृत्तांत जानकर उसे लगा कि यह बहुत बड़ा अनिष्ट हुआ है । यह विचारकर वह राजा के पास गया और कहा कि '' हे राजन्! ये तो मेरे जमाईराजा हैं । वे तख्ते के सहारे समुद्र से बचकर आये हुए हैं । अतः मेरी पुत्री की कलाई किसी और ठग ने काटी होगी ।'' जसादित्य द्वारा इस प्रकार सुनकर राजा ने शूली पर से अरूनदेव को उतरवा दिया । अनेक उपचारों से उसे स्वस्थ किया । अन्त में अरूणदेव और देवणी दोनों अनशन करके देवलोक में गये । इस प्रकार क्रोधी वचनों की आलोचना न लेने के कारण अनन्तर भव में चंद्रा के जीव को कलाई कटवानी पड़ी और अरूण देव को शूली पर चढ़ाना पड़ा । अतः क्रोधादि कषायों की भी आलोचना लेनी चाहिये ।

F. नमो नमो खंधक महामुनि

जितशत्रु राजा और धारिणी के पुत्र खंधक कुमार पूर्वभव में चीभड़ी की छाल निकालकर खुश हुआ था कि ''कितनी सुंदर छाल उतारी है?'' इस प्रकार छाल उतारने का कर्मबंध हो गया । उसके पश्चात् उसकी आलोचना नहीं ली । क्रम से राजकुमार खंधक बने । फिर धर्मघोष मुनि की देशना सुनकर राज्य–वैभव छोड़कर संयम लिया । राजकुमार में से खंधक मुनि बने । चारित्र लेने के पश्चात् बेले–तेले वगेरे कठोर तपश्चया कर काया को कृश दिया । एक दिन विहार करते–करते खंधक मुनि सांसारिक बहन–

बहनोई के गाँव में आये । राजमहल के झरोखे में बैठी हुई बहन की नजर रास्ते पर चलते मुनि के ऊपर पड़ते ही विचार करने लगी, ''कहाँ गृहस्थावास में मेरे भाई की गुलाब–सी काया और कहाँ आज तप के कारण झुर्रियाँ पड़ी हुई काले कोयले जैसी काया । अरे! चलते–चलते हड्डियाँ लडखडाती हैं।

इस प्रकार अतीत की सृष्टि में विचार करती हुई भावावेश में आकर वह जोर–जोर से रोने लगी । मुनि पर दृष्टि और रुदन देखकर पास में बैठे हुए राजा ने सोचा कि, ''यह संन्यासी इसका पहले का कोई यार पुरुष होगा. अब उससे देहसुख नहीं मिलेगा, इसलिये रानी रो रही होगी ।

तप से कृश हुए शरीर के कारण अपना साला होते हुए भी राजा मुनि को पहचान न पाया और जल्लादों को कह दिया कि, जाओ... उस मुनि की जीते जी चमड़ी उतार कर ले आओ । जल्लादों ने मुनि को कहा कि ''हमारे राजा की आज्ञा है कि आपके शरीर से चमड़ी उतारनी है । उन पर क्रोध न करके मुनि ने आत्म–स्वरुप का विचार करने लगे कि देह और कर्म से आत्मा भिन्न है । चमड़ी तो शरीर की उतारेंगे, इससे मेरे कर्मों की निर्जरा होगी, कर्मनिर्जरा करने का ऐसा अपूर्व अवसर फिर कब आयेगा? इस प्रकार मन में सोचकर जल्लादों को कहा कि, ''अरे भाई! तपश्चर्या करने से मेरा शरीर खुरदरा हो गया है । इसलिये तुझे तकलीफ न हो, इस प्रकार मैं खड़ा रहूँ ।'' मुनि का कैसा उत्तम चिंतन? अपनी तकलीफ का विचार न करके जल्लादों की तकलीफ का विचार करने लगे । अब आप ही सोचिये कि,''जिसकी चमड़ी उतर रही हो, उसे तकलीफ ज्यादा होती है या जो चमड़ी उतार रहा हो, उसे ज्यादा होती है? समताभाव में ओतप्रोत मुनि ने राजा के जल्लादों पर जरा भी द्वेष नहीं किया । चार का शरण स्वीकार कर, काया को वोसिरा कर मुनि शुक्लध्यान पर चढ़ गये । चड़–चड़ चमड़ी उतरती गयी और मुनि शुक्लध्यान में आगे बढ़ते–बढ़ते केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्ष में चले गये । पास में रही हुई मुहपति खून से लाल हो गयी । माँस का टुकडा समझकर चील उसे लेकर आकाश में उड़ने लगी । संयोगवश वह मुहपति राजमहल में रानी के आगे ही गिरी । मुहपति को देखकर रानी ने नौकरों के पास जाँच करवाई तब पता चला कि राजा ने ही हुक्म करके तपस्वी मुनि की हत्या करवाई है । भाई मुनि की करुण मृत्यु जानकर रानी का हृदय थरथर काँपने लगा । आँखों में से बैर–बैर जितने आँसू गिरने लगे । राजा को भी हकीकत का पता चलने पर दोनों छाती–फाड़ रुदन करने लगे । संसार में अघटित और अनुचित यह काम हुआ है। अब यदि संसार नहीं छोडेंगे, तो ऐसे काम होते रहेंगे, इस प्रकार संसार के स्वरुप का विचार कर दोनों ने दीक्षा लेकर आलोचना ली। एक सज्झाय में भी कहा कि, ''आलोई पातकने सवि छंडी कठण कर्मने पीले'' आलोचना प्रायश्चित तप वगेरे करके केवलज्ञानी बनकर दोनों मोक्ष में गये।

यहाँ पर यह चिंतन करना चाहिये कि पूर्वभव में चीभड़ी की छाल उतारने का प्रायश्चित्त न लिया, तो शरीर की चमड़ी उतरवानी पड़ी और इस भव में मुनि की हत्या करवायी, तो भी प्रायश्चित्त ले लिया, तो राजा–रानी मोक्ष में गये। इस चिंतन में ओत–प्रोत होकर आलोचना लेने में प्रमाद नहीं करना चाहिये।

17. प्रश्नोत्तरी

1. 24 तीर्थंकर भगवान के पंच कल्याणक, तिथी व स्थल लिखो।
2. दस त्रिक कौन–कौन सी है ?
3. प्रणाम त्रिक के भेद कौन–कौन से है ?
4. तीन निसीहि कब–कब बोली जाती है ?
5. पूजा के तीन भेद कौन–कौन से है ?
6. अवस्था त्रिक के प्रकार लिखिए ?
7. पिंडस्थ अवस्था के तीन भेद कौन–कौन से है ?
8. आलंबन त्रिक के प्रकार लिखिए।
9. मुद्रा त्रिक के भेद लिखिए।
10. पूजा संबंधी कौन–कौन सी बातों में उपयोग रखना चाहिए ?
11. पांच परमेष्ठि में कौन–कौन आते है ?
12. चार घाती और चार अघाती कर्म कौन–कौन से है ?
13. आठ प्रातिहार्य के नाम लिखिए।
14. चार अतिशय कौन–कौन से है ?
15. अरिहंत परमात्मा के 34 अतिशय कौन–कौन से है ?
16. दीक्षा संबंधी नाद–घोष लिखिए।
17. गुरूवंदन के प्रकार कितने और कौन–कौन से है ?
18. वंदन करने के आठ कारण कौन–कौन से है ?
19. श्रावक जीवन के चौदह नियम कौन–कौन से है ?
20. अभक्ष्य के 22 प्रकार कौन–कौन से है ?
21. अभक्ष्य पदार्थ खाने से क्या होता है ?
22. प्राणीयों के तत्व मिश्रीत ऐसी आधुनिक पदार्थों के नाम लिखिए।
23. भोजन करते समय कौन–कौन सी बातों का ध्यान रखना चाहिए ?
24. माता–पिता एवं गुरूजनों के प्रति 12 प्रकार के विनय कौन–कौन से है ?
25. जीवों के भेद कितने और कौन–कौन से है ? संक्षिप्त उत्तर दिजीए ?
26. एक से पांच इन्द्रिय वाले जीवों के उदाहरण सहित संक्षिप्त में समझाइए।
27. दान के पांच दूषण कौन से है ? संक्षिप्त में समझाइए।
28. दान के पांच भूषण कौन से है ? संक्षिप्त में लिखिए।

29. आठ कर्म के नाम, भेद, किसके जैसा, और बंध का कारण एक Table के रूप में लिखें।
30. पटाखे फोडने से आठों कर्म किस तरह बंधते हैं ?
31. छठ्ठे आरे का वर्णन 8 Point में लिखे।
32. देवलोक के स्वरूप को 8 Point में व्याख्या करें।
33. नरक के स्वरूप को 8 Point में समझाओ।
34. नरक में होने वाली 10 वेदना को अंकित करो।
35. नरक में जाने के मुख्य चार द्वार कौन-कौन से हैं ?
36. नव तत्व कौन-कौन से हैं ?
37. नव तत्व के भेद कितने है ? कैसे ?
38. नव तत्व की व्याख्या संक्षिप्त में किजीए।
39. त्रिपदी कौनसी है ? उसकी व्याख्या, तत्व और भेद को Table के रूप में समझाइए।
40. नाव के दृष्टांत से नवतत्व को समझाइए।
41. सम्यग् दर्शन का स्पर्श हुआ या नहीं उसमें पहचान के पाँच लक्षण कौन-कौन से हैं ?
42. विभिन्न दृष्टि से जीव के प्रकारों को संक्षिप्त में समझाइए।
43. द्रव्य प्राण कितने और कौन-कौन से है ?
44. भाव प्राण कितने और कौन-कौन प्राण से है ?
45. पाँच इन्द्रियाँ कौन-कौन सी है ?
46. तीन बल कौन-कौन से है ?
47. जीव के चौदह भेद Table के रूप में समझाइए।
48. प्रत्येक जीव को प्राप्त इन्द्रियाँ, प्राण एवं पर्याप्तियाँ लिखिए।
49. रुपी-अरुपी का अर्थ क्या है ? तथा नवतत्व में उनके भेद कैसे है ?
50. अठारह पापस्थानक कौन-कौन से है ?
51. पृथ्वी गोल नहीं है उसके प्रमाण क्या-क्या है ?
52. भरत और बाहुबली की कथा 10 Points में वर्णन करें।
53. रोहिणया चोर की कथा 10 Points में वर्णन करें।
54. श्री नयसार की कथा 10 Points में वर्णन करें।
55. श्री इलाची कुमार की कथा का वर्णन 10 Points में करें।
56. चंद्रा और सर्ग की कहानी 10 Points में लिखें।
57. श्री खंधक मुनि की कथा का वर्णन 10 Points में करें।

MODEL QUESTION PAPER

प्रश्न **1. नीचे बतायी गयी गाथा पूर्ण करों** 15

1. जे चौद महास्वप्नों थकी...
2. मातंग सिद्धाई, देवी जिनपद सेवी...
3. लक्ष्मणा माता जनमीयो...

प्रश्न **2. सही या गलत समझकर लिखिए** 5

1. मंदिरजी में प्रदक्षिणा देते समय नीसिहि त्रिक का पालन करना चाहिए।
2. 22 अभक्ष्य और 32 अनंतकाय का त्याग करना चाहिए।
3. जीवविज्ञान में मनुष्य के 305 भेद बताये गये है।
4. देवों का उत्कृष्ट आयुष्य 33 सागरोपम का होता है।
5. खंधक कुमार के माता-पिता का नाम जितशत्रु एवं धारिणी है।

प्रश्न **3. व्याख्या कीजिए (तीन पंक्तियों में)** 10

1. पृथ्वीकाय के जीव
2. अनंतकाय
3. मिथ्यात्व शल्य
4. नाम कर्म
5. नव तत्व

प्रश्न **4. सवालों के जवाब दीजिए** 30

1. मंदिरजी में कितनी त्रिक का पालन करना चाहिए एवं उनके नाम लिखिए।
2. अभक्ष्य के 22 प्रकार के नाम लिखिए?
3. पंचेन्द्रिय मनुष्य कितने प्रकार के है ?
4. दान के भूषण कितने एवं कौन से ?
5. नरकावास कुल कितने है ?
6. नव तत्वों के नाम, भेद सहित लिखिए।
7. द्रव्य एवं भाव प्राण के प्रकार लिखिए।
8. भगवान महावीर स्वामी ने शासन की स्थापना किस दिन एवं कहाँ पर की थी?
9. भरत महाराजा को केवलज्ञान कैसे हुआ?
10. इलाचीकुमार के माता-पिता ने किस अधिष्ठायिका देवी की पूजा की ?

प्रश्न **5. श्रावक के चौदह नियम विस्तार से समझायिए** 10

प्रश्न **6. प्रश्नों के उत्तर दीजिए।** 20

1. नयसार की कहानी संक्षिप्त में बताईए।
2. 12 प्रकार के विनय समझाइए।
3. चीन की दीवार का उदाहरण देकर पृथ्वी गोल है या नहीं, साबित कीजिए।
4. नाँव के दृष्टांत से नवतत्व समझाइए।

प्रश्न **7. देवलोक का स्वरुप विस्तार से लिखिए** 10

18. सामान्य ज्ञान

A. Game

प्रस्तुत कालचक्र में बाईस अभक्ष्य खोजकर नीचे लिखें। नाम उल्टे, सीधे, टेढे या तीरछे हो सकते है परंतु एक सीधी लाईन में है। बॉक्स में भी निशान करें।

अ	द	ह	श	ष	म	य	र	ल	व
क	न	म	रा	र्फ	र	त	क	अ	छ
फ	म	स	ब	ब	त	चा	आ	नं	ण
व	म	न	दुं	स	क	ण	आ	त	थ
ख	ण	उ	इ	मां	आ	ख	ड़	का	थ
ध	ला	म	क	ख	न	लं	ध	य	ढ
का	झ	द्वि	ङ्क	उ	ङ्ग	पि	ष	श	अ
औ	अ	ण	द	गू	स्म	ज	म	न	त्त
ष	श	पी	प	ल	ह	प्प	जा	न	द
ङ्ग	च	लि	त	र	स	ना	क	म	त
ब	हु	बी	ज	न	फ	ख	मि	ट्टी	भ
ध	अ	भो	ज	ल	ग	य	म	क्त	ध
ळ	त्रि	भो	ला	इ	ध	बैं	र	क	द
रा	त्रि	न	आ	ओ	क	ट	म	र	म
रा	ङ्क	तु	च्छ	फ	ल	क्ख	व	व	ल

बाईस अभक्ष्य

1.................. .... 9...................................... 17......................................

2.................. .... 10...................................... 18......................................

3.................. .... 11...................................... 19......................................

4.................. .... 12...................................... 20......................................

5.................. .... 13...................................... 21......................................

6.................. .... 14...................................... 22......................................

7.................. .... 15......................................

8.................. .... 16......................................

B. चित्रावली

श्री भगवान महावीर के जीवन से संबंधित कोई भी एक दृश्य यहां पर बनाइयें -

"कल्याणकारी जिनशासन को नमन"

श्रीमती मंजुदेवी उम्मेदमलजी कटारिया

ममतामयी माता... सदा नेक राह दिखाते पिता...
के पावन चरणों में शतः शतः नमन

डॉ. रमेश-उर्मिला, सुनील-सरिता, अनिल-नीलम

दादा-दादी के चरणों में, हम भी करते हैं नमन...

हर्षा, विशाल, भावना, डॉली, अरिहंत, कोमल, दिशा कटारिया

भारत भर में फैली करीबन 63 संस्कार वाटिकाओं को हार्दिक शुभकामनाएँ

AFP

Aradhana Fitness Point

Deals in : Acu Pressure, Acu Puncture, Feng Shui, Vaastu, Health Care Products, Magnetic Products, Health Fitness Equipments, Furnitures, Gifts, etc.

52, Peddu Naicken Street, Kondithope, Chennai - 600 079.
M : Ramesh 98400 65104, Sunil 98400 89599 Anil : 98402 06718
Email : aradhanafitnesspoint@gmail.com
www.indiamart.com/aradhana acupuncture products

धार्मिक पाठशाला में आने से.....

1) सुदेव, सुगुरु, सुधर्म की पहचान होती है।

2) भावगर्भित पवित्र सूत्रों के अध्ययन व मनन से मन निर्मल व जीवन पवित्र बनता है और जिनाज्ञा की उपासना होती है।

3) कम से कम, पढाई करने के समय पर्यंत मन, वचन व काया सद्विचार, सद्वाणी तथा सद्वर्तन में प्रवृत्त बनते हैं।

4) पाठशाला में संस्कारी जनों का संसर्ग मिलने से सद्गुणों की प्राप्ति होती है ''जैसा संग वैसा रंग''।

5) सविधि व शुद्ध अनुष्ठान करने की तालीम मिलती है।

6) *भक्ष्याभक्ष्य आदि का ज्ञान मिलने से अनेक पापों से बचाव होता है।*

7) कर्म सिद्धान्त की जानकारी मिलने से जीवन में प्रत्येक परिस्थिति में समभाव टिका रहता है और दोषारोपण करने की आदत मिट जाती है।

8) महापुरुषों की आदर्श जीवनियों का परिचय पाने से सत्त्वगुण की प्राप्ति तथा *प्रतिकुल परिस्थितिओं में दुर्ध्यान का अभाव रह सकता है।*

9) विनय, विवेक, अनुशासन, नियमितता, सहनशीलता, गंभीरता आदि गुणों से जीवन खिल उठता है।

**बच्चा आपका, हमारा एवं
संघ का अमूल्य धन है।
उसे सुसंस्कारी बनाने हेतु
धार्मिक पाठशाला अवश्य भेंजे।**